देवपुरस्कार ग्रंथावली — १

आधुनिक कवि



महादेवी वर्मा, एम० ए०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

संवत् १९९७

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

प्रथम संस्करण
मूल्य १॥)

मुद्रक—जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशक का वक्तव्य

'बुदेलखड मे ओरछा राज्य प्राचीन काल से हिन्दी साहित्य और कवियो का' सम्मान करता आ रहा है। इस क्रम को वर्तमान नरेश सवाई महेन्द्र सर वीरसिंह जी देव ने अक्षुण्ण रक्खा है और सवत् १९९० वि० से प्रतिवर्ष किसी हिन्दी कवि के सम्मानार्थ २०००) का पुरस्कार देते आ रहे हैं। सवत् १९९४ मे प्रतियोगिता के लिये आये हुए ग्रन्थो मे से कोई रचना पुरस्कार योग्य नही समझी गई और इस कारण पुरस्कार प्रबन्धकर्त्री समिति श्री वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद् ने इस निधि मे से १०००) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग को 'देव पुरस्कार ग्रंथावली' के नाम से एक पुस्तक-माला प्रकाशित करने के लिये प्रदान किया। इस दान के लिये सम्मेलन श्रीमान् ओरछा-नरेश तथा पुरस्कार प्रबन्धकर्त्री समिति का कृतज्ञ है।

सम्मेलन की साहित्य समिति ने यह निश्चय किया है कि इस ग्रथावली मे आधुनिक काल के प्रतिनिधि कवियो के काव्य-सग्रह प्रकाशित किए जायँ। इस माला की विशेषता यह होगी कि प्रत्येक कवि स्वय अपनी कविताओ का चयन करेगा और स्वय ही अपनी कविता का दृष्टिकोण पाठको के सामने उपस्थित करेगा। प्रत्येक सग्रह के साथ कवि की हस्तलिपि का नमूना और उसकी प्रतिकृति का पेसिल-स्केच भी रहेगा। इस प्रकार, आशा है, यह सग्रह अद्वितीय सिद्ध होगा और समस्त हिन्दी-प्रेमी जनता को राष्ट्र भाषा की नवीन काव्य-रचना की प्रगति को समझने और अध्ययन करने मे सुविधा प्राप्त होगी।

प्रस्तुत सग्रह इस माला का प्रथम पुष्प है। श्रीमती महादेवी वर्मा जी का हिन्दी के कलाकारो मे प्रमुख स्थान है। उनको जितना अधिकार लेखनी पर है उतना ही तूलिका पर भी है। छायावाद के गिने चुने कवियो मे उनकी गिनती है। उनके काव्य का स्वय व्यक्तित्व है। हमे विश्वास है कि पाठको को इस सग्रह द्वारा कवयित्री के काव्य का व्यक्तित्व और मर्म समझने मे विशेष सहायता मिलेगी।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग
१ दिसम्बर, '४०

विनीत
ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
साहित्य मत्री



लेखिका

रेखाकार, शम्भुनाथ मिश्र

हस्तलिपि

पंथ होने दो अपरिचित

प्राण रहने दो अकेला

और होंगे चरण हारे,

अन्य हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे,

दुखव्रती निर्माण-उन्मद

यह अमरता नापते पद,

बाँध देंगे अंक-संसृति से तिमिर में स्वर्ण-बेला

दूसरी होगी कहानी,

शून्य में जिसके मिटे स्वर धूलि में खोई निशानी,

आज जिस पर प्रलय विस्मित,

मैं लगाती चल रही नित,

मोतियों की हाट औ' चिनगारियों का एक मेला

हास का मधु-दूत भेजो,

रोष की भ्रूभंगिमा पतझार को चाहे सहेजो

ले मिलेगा उर अचंचल

वेदना-जल स्वप्न-शतदल

जान लो वह मिलन-एकाकी विरह में है दुकेला !

महादेवी

अपने दृष्टिकोण से

मनुष्य चाहे प्रकृति के जड उपादानो का सघातविशेष माना जावे और चाहे किसी व्यापक चेतना का अशभूत परन्तु किसी भी अवस्था मे उसका जीवन इतना सरल नही है कि हम उसकी पूर्ण तृप्ति के लिए गणित के अको के समान एक निश्चित सिद्धान्त दे सके। जड द्रव्य से अन्य पशु तथा वनस्पति जगत के समान ही उसका शरीर निर्मित और विकसित होता है अत प्रत्यक्ष रूप से उसकी स्थिति बाह्य जगत मे ही रहेगी और प्राणिशास्त्र के सामान्य नियमो से सचालित होगी। यह सत्य है कि प्रकृति मे जीवन के जितने रूप देखे जाते है मनुष्य उनमे इतना विशिष्ट जान पडता है कि सृजन की स्थूल समष्टि मे भी उसका निश्चित स्थान खोज लेना कठिन हो जाता है, परन्तु इस कठिनाई के मूल मे तत्त्वत कोई अन्तर न होकर विकास-क्रम मे मनुष्य का अन्यतम और अन्तिम होना ही है।

यदि सबके लिए सामान्य यह बाह्य ससार ही उसके जीवन को पूर्ण कर देता तो शेष प्राणिजगत के समान वह बहुत सी जटिल समस्याओ से बच जाता। परन्तु ऐसा हो नही सका। उसके शरीर मे जैसा भौतिक जगत का चरम विकास है उसकी चेतना भी उसी प्रकार प्राणिजगत की चेतना का उत्कृष्टतम रूप है।

मनुष्य का निरन्तर परिष्कृत होता चलनेवाला यह मानसिक जगत वस्तुजगत के सघर्ष से प्रभावित होता है, उसके सकेतो मे अपनी अभिव्यक्ति चाहता है परन्तु उसके बन्धनो को पूर्णता मे स्वीकार नही करना चाहता। अत जो कुछ प्रत्यक्ष है केवल उतना ही मनुष्य नही कहा जा सकता—उसके साथ साथ उसका जितना विस्तृत और गतिशील अप्रत्यक्ष जीवन है उसे भी समझना होगा, प्रत्यक्ष जगत मे उसका भी मूल्याकन करना होगा, अन्यथा मनुष्य के सम्बन्ध मे हमारा सारा ज्ञान अपूर्ण और सारे समाधान अधूरे रहेगे।

मनुष्य के इस दोहरे जीवन के समान ही उसके निकट बाह्य जगत की सब वस्तुओ का उपयोग भी दोहरा है। ओस की बूँदो से जडे गुलाब के दल जब हमारे हृदय मे सुप्त एक अव्यक्त सौन्दर्य्य और सुख की भावना को जागृत कर देते हैं, उनकी क्षणिक सुषमा हमारे मस्तिष्क को चिन्तन की सामग्री देती है तब हमारे निकट उनका जो उपयोग है वह उस समय के उपयोग से सर्वथा भिन्न होगा जब

हम उन्हे मिश्री मे गलाकर और गुलकन्द नाम देकर औषधि के रूप में ग्रहण करते है। समय, आवश्यकता और वस्तु के अनुसार इस दोहरे उपयोग की मात्रा तथा तज्जनित रूप कभी कभी इतने भिन्न हो जाते है कि हमारा अन्तर्जगत बहिर्जगत का पूरक होकर भी उसका विरोधी जान पडता है और हमारा बाह्य जीवन मानसिक से सचालित होकर भी उसके सर्वथा विपरीत।

मनुष्य के अन्तर्जगत का विकास उसके मस्तिष्क और हृदय का परिष्कृत होते चलना है, परन्तु इस परिष्कार का क्रम इतना जटिल होता है कि वह निश्चित रूप से केवल बुद्धि या केवल भावना का सूत्र पकडने मे असमर्थ ही रहता है। अभिव्यक्ति के बाह्य रूप मे बुद्धि या भावपक्ष की प्रधानता ही हमारी इस धारणा का आधार बन सकती है कि हमारे मस्तिष्क का विशेष परिष्कार चिन्तन मे हो सका है और हृदय का जीवन मे। एक में हम बाह्यजगत के संस्कारो को अपने भीतर लाकर उनका निरीक्षण परीक्षण करते हैं और दूसरे में अपने अन्तर्जगत की अनुभूतियो को बाहर लाकर उनका मूल्य आँकते हैं।

चिन्तन में हम अपनी बहिर्मुखी वृत्तियो को समेट कर किसी वस्तु के सम्बन्ध मे अपना बौद्धिक समाधान करते हैं, अत. कभी कभी वह इतना ऐकान्तिक होता है कि अपने से बाहर प्रत्यक्ष जगत के प्रति हमारी चेतना पूर्णरूप से जागरूक ही नहीं रहती और यदि रहती है तो हमारे चिन्तन मे बाधक होकर। दार्शनिक मे हम बुद्धिवृत्ति का ऐसा ही ऐकान्तिक विकास पाते हैं जो उसे जैसे जैसे ससार के अव्यक्त सत्य की गहराई तक बढ़ाता चलता है वैसे वैसे उसके व्यक्त रूप के प्रति वीतराग करता जाता है। वैज्ञानिक के निरन्तर अन्वेषण के मूल मे भी यही वृत्ति मिलेगी; अन्तर केवल इतना ही है कि उसके चिन्तनमय मनन का विषय सृष्टि के व्यक्त विविध रूपो की उलझन है, उन रूपों मे छिपा हुआ अव्यक्त सूक्ष्म नही। अपनी अपनी खोज में दोनो ही वीतराग हैं क्योकि न दार्शनिक अव्यक्त सत्य से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रेरणा पाता है और न वैज्ञानिक व्यक्त जड़द्रव्य के विविध रूपो में रागात्मक स्पर्श का अनुभव करता है। एक व्यक्त के रहस्य की गहराई तक पहुँचना चाहता है, दूसरा उसीके प्रत्यक्ष विस्तार की सीमा तक, परन्तु दोनो ही दिशाओं में बुद्धि से अनुशासित हृदय को मौन रहना पड़ता है इसीसे दार्शनिक और वैज्ञानिक जीवन का वह सम्पूर्ण चित्र जो मनुष्य और शेष सृष्टि के रागात्मक सम्बन्ध से अनुप्राणित हैं नही दे सकते।

मनुष्य के ज्ञान की कुछ शाखाये दर्शन, विज्ञान आदि के समान अपनी दिशा मे व्यापक न रह कर जीवन के किसी अश विशेष से सम्बन्ध रखती हैं, अत जहाँ वे आगे बढते हैं वहाँ ये जीवन की परिवर्तित परिस्थितियो के साथ परिवर्तित हो हो कर अपनी तात्कालिक नवीनता मे ही विकसित कहलाती है।

मनुष्य एक ओर अपने मानसिक जगत की दुरूहता को स्पष्ट करता चलता है, दूसरी ओर अपने बाह्य ससार की समस्याओ को सुलझाने का प्रयत्न करता है। उसके समाजशास्त्र, राजनीति आदि उसकी बाह्य स्थिति की व्याख्या है, उसका विज्ञान प्रकृति के मूलतत्त्वो से उसके सघर्ष का इतिहास है, उसका दर्शन उसके तथा सृष्टि के रहस्यमय जीवन का बौद्धिक निरूपण है और उसका साहित्य उसके उस समग्र जीवन का सजीव चित्र है जो राजनीति से शासित, समाजशास्त्र से नियमित, विज्ञान से विकसित तथा दर्शन से व्यापक हो चुका है।

साहित्य मे मनुष्य की बुद्धि और भावना इस प्रकार मिल जाती है जैसे धूपछाही वस्त्र मे दो रगो के तार जो अपनी अपनी भिन्नता के कारण ही अपने रगो से भिन्न एक तीसरे रग की सृष्टि करते है। हमारी मानसिक वृत्तियो की ऐसी सामञ्जस्यपूर्ण एकता साहित्य के अतिरिक्त और कही सम्भव नही। उसके लिए न हमारा अन्तर्जगत त्याज्य है और न बाह्य क्योकि उसका विषय सम्पूर्ण जीवन है, आशिक नही।

मनुष्य के बाह्य जीवन मे जो कुछ ध्वस और निर्माण हुआ है, उसकी शक्ति और दुर्बलता की जो परीक्षाएँ हुई है, जीवनसघर्ष मे उसे जितनी हारजीत मिली है केवल उसीका ऐतिहासिक विवरण दे देना साहित्य का लक्ष्य नही। उसे यह भी खोजना पडता है कि इस ध्वस के पीछे कितनी विरोधी मनोवृत्तियाँ काम कर रही थी, निर्माण मनुष्य की किस सृजनात्मक प्रेरणा का परिणाम था, उसकी शक्ति के पीछे कौन सा आत्मबल अक्षय था, दुर्बलता उसके किस अभाव से प्रसूत थी, हार उसकी किस निराशा की सज्ञा थी और जीत मे उसकी कौन सी कल्पना साकार हो गई।

✓जीवन का वह असीम और चिरन्तन सत्य जो परिवर्तन की लहरो मे अपनी क्षणिक अभिव्यक्ति करता रहता है अपने व्यक्त और अव्यक्त दोनो ही रूपो की एकता लेकर साहित्य मे व्यक्त होता है। साहित्यकार जिस प्रकार यह जानता है कि बाह्य जगत मे मनुष्य जिन घटनाओ को जीवन का नाम देता है वे जीवन के व्यापक सत्य की गहराई और उसके आकर्षण की परिचायक है, जीवन नही,

उसी प्रकार यह भी उससे छिपा नही कि जीवन के जिस अव्यक्त रहस्य की वह भावना कर सकता है उसी की छाया इन घटनाओ को व्यक्त रूप देती है। इसीसे देश और काल की सीमा मे बँधा साहित्य रूप मे एकदेशीय होकर भी अनेकदेशीय और युगविशेष से सम्बद्ध रहने पर भी युगयुगान्तर के लिए सवेदनीय बन जाता है।

साहित्य की विस्तृत रगशाला मे हम कविता को कौन सा स्थान दे यह प्रश्न भी स्वाभाविक ही है। वास्तव मे जीवन मे कविता का वही महत्त्व है जो कठोर भित्तियो से घिरे कक्ष के वायुमण्डल को अनायास ही बाहर के उन्मुक्त वायुमण्डल से मिला देनेवाले वातायन को मिला है। जिस प्रकार वह आकाश-खण्ड को अपने भीतर बन्दी कर लेने के लिए अपनी परिधि मे नही बाँधता प्रत्युत हमें उस सीमारेखा पर खडे होकर क्षितिज तक दृष्टिप्रसार की सुविधा देने के लिए; उसी प्रकार कविता हमारे व्यष्टि-सीमित जीवन को समष्टि-व्यापक जीवन तक फैलाने के लिए ही व्यापक सत्य को अपनी परिधि में बाँधती है। साहित्य के अन्य अग भी ऐसा करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु न उनमें सामञ्जस्य की ऐसी परिणति होती है न आयास-हीनता। जीवन की विविधता में सामञ्जस्य को खोज लेने के कारण ही कविता उन ललित कलाओं मे उत्कृष्टतम स्थान पा सकी है जो गति की विभिन्नता, स्वरो की अनेकरूपता या रेखाओ की विषमता के सामञ्जस्य पर स्थित है।

कविता मनुष्य के हृदय के समान ही पुरातन है परन्तु अब तक उसकी कोई ऐसी परिभाषा न बन सकी जिसमे तर्कवितर्क की सम्भावना न रही हो। धुँधले अतीतभूत से लेकर वर्तमान तक और 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' से लेकर आज के शुष्क बुद्धिवाद तक जो कुछ काव्य के रूप और उपयोगिता के सम्बन्ध में कहा जा चुका है वह परिमाण में कम नही, परन्तु अब तक न मनुष्य के हृदय का पूर्ण परितोष हो सका है और न उसकी बुद्धि का समाधान। यह स्वाभाविक भी है क्योकि प्रत्येक युग अपनी विशेष समस्याये लेकर आता है जिनके समाधान के लिए नई दिशाये खोजती हुई मनोवृत्तियाँ उस युग के काव्य और कलाओं को एक विशिष्ट रूपरेखा देती रहती हैं। मूलतत्त्व न जीवन के कभी बदले हैं और न काव्य के, कारण वे उस शाश्वत चेतना से सम्बद्ध है जिसके तत्त्वतः एक रहने पर ही जीवन की अनेकरूपता निर्भर है।

अतीत युगो के जितने सचित ज्ञानकोष के हम अधिकारी हैं उसके आधार पर

कहा जा सकता है कि कविता मानव-ज्ञान की अन्य शाखाओ की सदैव अग्रजा रही है। यह क्रम अकारण और आकस्मिक न होकर सकारण और निश्चित है क्योकि जीवन मे चिन्तन के शैशव मे ही भावना तरुण हो जाती है। मनुष्य बाह्य ससार के साथ कोई बौद्धिक समझौता करने के पहले ही उसके साथ एक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है यह उसके शिशु जीवन से ही स्पष्ट हो जायगा। यदि हम मनुष्य के मस्तिष्क के विकास की तुलना फल के विकास से करे जो अपनी सरसता मे सदा ही परिमित है तो उसके हृदय के विकास को फूल का विकास कहना उचित होगा जो अपने सौरभ मे अपरिमित होकर ही खिला हुआ माना जाता है। एक अपनी परिपक्वता मे पूर्ण है और दूसरा अपने विस्तार मे।

यह सत्य है कि मनुष्य के ज्ञान की समष्टि मे कविता को और विशेषत उसके बाह्य रूप को इतना महत्त्व मनुष्य की भावुकता से ही नही उसके व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी मिला था। जिस युग मे मानव-जाति के समस्त ज्ञान को एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ मे सचरण करते हुए ही रहना पडता था उस युग मे उसकी प्रत्येक शाखा को अपने अस्तित्व के लिए छन्दबद्धता के कारण स्मृतिसुलभ पद्य का ही आश्रय लेना पडा। इसके अतिरिक्त शुष्क ज्ञान ने अधिक ग्राह्य होने के लिए भी पद्य की रूपरेखा का वह बन्धन स्वीकार किया जिसमे विशेष ध्वनि और प्रवाह से युक्त होकर शब्द अधिक प्रभावशाली हो जाते है। कहना व्यर्थ होगा कि काव्य के उस धुँधले आदिम काल से लेकर जब आवश्यकतावश ही मनुष्य प्राय अपने बौद्धिक निरूपणो को भी काव्यकाया मे प्रतिष्ठित करने पर बाध्य हो जाता था, आज गद्य के विकास-काल तक ऐसी कविता का अभाव नही रहा।

साधारणत. हमारे विचार विज्ञापक होते है और भाव सक्रामक, इसीसे एक की सफलता पहले मननीय होने मे है और दूसरे की पहले सवेदनीय होने में। कविता अपनी सवेदनीयता मे ही चिरन्तन है चाहे युगविशेष के स्पर्श से उसकी बाह्य रूपरेखा मे कितना ही अन्तर क्यो न आ जावे। और यह सवेदनीयता भावपक्ष ही से अक्षय है। विज्ञान से समृद्ध भौतिकता की ओर उन्मुख बुद्धिवादी आधुनिक युग ने तो मानो हमारी कविता के सामने एक विशाल प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है, विशेष कर उस कविता के सामने जो व्यक्त जगत में परोक्ष की अनुभूति और आभास से रहस्य और छायावाद की सज्ञा पाती आ रही है।

यह भावधारा मूलत नवीन नही है क्योकि इसका कही प्रकट और कही छिपा सूत्र हम अपने साहित्य की सीमान्त रेखा तक पाते है। कारण स्पष्ट है। किसी भी

जाति की विचारसरणि, भावपद्धति, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण आदि उसकी सस्कृति से प्रसूत होते है। परन्तु सस्कृति की कोई एक परिभाषा देना कठिन हो सकता है क्योकि न वह किसी जाति की राजनैतिक व्यवस्था मात्र होती है और न केवल सामाजिक चेतना, न उसे नैतिक मर्यादा मात्र कह सकते हैं और न केवल धार्मिक विश्वास। देशविशेष के जलवायु मे विकसित किसी जातिविशेष के अन्तर्जगत और बाह्य जीवन का वह ऐसा समष्टिगत चित्र है जो अपने गहरे रंगो मे भी अस्पष्ट और सीमा मे भी असीम है वैसे ही जैसे हमारे आँगन का आकाश। यह सत्य है कि सस्कृति की बाह्य रूपरेखा बदलती रहती है परन्तु मूलतत्त्वो का बदल जाना तबतक सम्भव नही होता जब तक उस जाति के पैरो के नीचे से वह विशेष भूखण्ड और उसे चारो ओर से घेरे रहनेवाला वह विशिष्ट वायुमण्डल ही न हटा लिया जावे।

जहाँ तक इतिहास की किरणे नही पहुँच पाती उसी सुदूर अतीत मे जो जाति इस देश मे आकर बस गई थी जहाँ न बर्फ के तूफान आते थे न रेत के बवडर, न आकाश निरन्तर ज्वाला बरसाता रहता था और न अविराम रोता, न तिल भर भूमि और पल भर के जीवन के लिए मनुष्य का प्रकृति से सघर्ष होता था न हार, उस जाति की सस्कृति अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व रखती है। सुजला सफला शस्यश्यामला पृथ्वी के अक में, मलयसमीर के झोको मे झूलते हुए, मुस्कराती नदियो की तरग-भगिमा मे गति मिला कर, उन्मुक्त आकाशचारी विहगो के कण्ठ से कण्ठ मिलाकर मनुष्य ने जिस जीवन का निर्माण किया, जिस कल्पना और भावना को विस्तार दिया, जिस सामूहिक चेतना का प्रसार किया और जिन अनुभूतियो की अभिव्यञ्जना की उसके सस्कार इतने गहरे थे कि भीषण रक्तपात और उथलपुथल मे भी वे अकुरित होने की प्रतीक्षा मे धूल मे दबे हुए बीज के समान छिपे रहे, कभी नष्ट नही हुए।

वास्तव मे उस प्राचीन जीवन ने मनुष्य को प्रकृति से तादात्म्य अनुभव करने की, उसके व्यष्टिगत सौन्दर्य्य पर चेतन व्यक्तित्व के आरोप की तथा उसकी समष्टि मे रहस्यानुभूति की सभी सुविधायें सहज ही दे डाली। हम वीर पुत्रो और पशुओ की याचना से भरी वेद ऋचाओ मे जो इतिवृत्त पाते हैं वही उषा, मरुत् आदि को चेतन व्यक्तित्व देकर एक सहज और सरल सौन्दर्यानुभूति में बदल गया है। फिर यही व्यष्टिगत सरल सौन्दर्य्यबोध उस सर्ववाद का अग्रदूत बन जाता है जिसका अकुर पुरुष सूक्त मे, विश्व पर एक विराट

शरीरत्व के आरोपण द्वारा प्रकट हुआ है। आगे चलकर इसीके निखरे रूप की झलक सृष्टि सम्बन्धी ऋचाओ के गम्भीर प्रश्नो मे मिलती है जो उपनिषदो के ज्ञान-समुद्र मे मिलकर उसकी लहर मात्र बन कर रह गया।

ज्ञानक्षेत्र के तत्त्वमसि, सर्वं खल्विद ब्रह्म, सोऽहम् आदि ने उस युग के चिन्तन को कितनी विविधता दी है यह कहना व्यर्थ होगा। तत्त्वचिन्तन के इतने विकास ने एक ओर मनुष्य को व्यावहारिक जगत के प्रति वीतराग बनाकर निष्क्रियता बढाई और दूसरी ओर अनधिकारियो द्वारा प्रयोगरूप सिद्धान्तो को सत्य बन जाने दिया जिससे रूढिवाद की सृष्टि सम्भव हो सकी। इसी की प्रतिक्रिया से उत्पन्न बुद्ध की विचारधारा ने एक ओर ज्ञानक्षेत्र की निष्क्रिय चेतना के स्थान मे अपनी सक्रिय करुणा दी और दूसरी ओर रूढिवाद को रोकने के लिए पुराने प्रतीक भी अस्वीकृत कर दिये।

यह क्रम प्रत्येक युग के परिवर्तन मे कुछ नये उलट फेर के साथ आता रहा है इसीसे आधुनिक काल के साथ भी इसे जानने की आवश्यकता रहेगी।

कबिता के जीवन मे भी स्थूल जीवन से सम्बन्ध रखनेवाला इतिवृत्त, सूक्ष्म सौन्दर्य्य की भावना, उसका चिन्तन मे अत्यधिक प्रसार और अन्त मे निर्जीव अनुकृतियाँ आदि क्रम मिलते ही रहे है। इसे और स्पष्ट करके देखने के लिए, हमारा उस युग के काव्यसाहित्य पर एक दृष्टि डाल लेना पर्याप्त होगा जिसकी धारा वीरगाथाकालीन इतिवृत्त के विषम शिलाखण्डो मे से फूट कर, निर्गुण सगुण भावनाओ की उर्वर भूमि मे प्रशान्त, निर्मल और मधुर होती हुई रीतिकालीन रूढिवाद के क्षार जल मे मिलकर गतिहीन हो गई।

परिवर्तन का वही क्रम हमारे आधुनिक काव्यसाहित्य को भी नई रूपरेखाओ में बाँधता चल रहा है या नही, यह कहना अभी सामयिक न होगा। रीतिकालीन रूढ़िवाद से थके हुए कवियो ने जब सामयिक परिस्थितियो से प्रेरित होकर तथा बोलचाल की भाषा मे अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता और प्रचार की सुविधा समझ कर, ब्रजभाषा का जन्मजात अधिकार खडीबोली को सौप दिया तब साधारणत लोग निराश ही हुए। भाषा लचीलेपन से मुक्त थी, ब्रजमाधुर्य्य के अभ्यस्त कानो को ध्वनि मे कर्कशता जान पडती थी और उक्तियो मे चमत्कार न मिलता था। इसके साथ साथ रीतिकाल की प्रतिक्रिया भी कुछ कम वेगवती न थी अत उस युग की कविता की इतिवृत्तात्मकता इतनी स्पष्ट हो चली कि मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म भावनाये विद्रोह

कर उठी। इसमे सन्देह नही कि उस समय की अधिकाश रचनाओ मे, भाषा लचीली न होने पर भी परिष्कृत, भाव सूक्ष्मतारहित होने पर भी सात्विक, छन्द नवीनताशून्य होने पर भी भावानुरूप और विषय रहस्यमय न रहने पर भी लोकपरिचित और सस्कृत मिलते है। पर स्थूल सौन्दर्य्य की निर्जीव आवृत्तियो से थके हुए और कविता की परम्परागत नियम-शृखला से ऊबे हुए व्यक्तियो को, फिर उन्ही रेखाओ मे बँधे स्थूल का, न तो यथार्थ-चित्रण रुचिकर हुआ और न उसका रूढिगत आदर्श भाया। उन्हे नवीन रूपरेखाओ मे सूक्ष्म सौन्दर्य्यानुभूति की आवश्यकता थी जो छायावाद मे पूर्ण हुई।

छायावाद ने नये छन्दबन्धो मे, सूक्ष्म सौन्दर्य्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खडीबोली की सात्विक कठोरता नही सह सकता था अत. कवि ने कुशल स्वर्ण-कार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तोल और काटछाँट कर तथा कुछ नये गढ कर अपनी सूक्ष्म भावनाओ को कोमलतम कलेवर दिया। इस युग की प्राय सब प्रतिनिधि रचनाओ मे किसी न किसी अश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य्य मे व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य्य पर चेतनता का आरोप भी, परन्तु अभिव्यक्ति की विशेष शैली के कारण वे कही सौन्दर्य्यानुभूति की व्यापकता, कही सवेदन की गहराई, कही कल्पना के सूक्ष्म रंग और कही भावना की मर्मस्पर्शिता लेकर अनेक वादो को जन्म दे सकी है।

यह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बगाल की नवीन काव्यधारा से परिचित तो था ही साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की भारतीय परम्परा भी रही।

जो रहस्यानुभूति हमारे ज्ञानक्षेत्र मे एक सिद्धान्त मात्र थी वही हृदय की कोमलतम भावनाओ मे प्राणप्रतिष्ठा पाकर तथा प्रेममार्गी सूफी सन्तो के प्रेम में अतिरजित होकर ऐसे कलात्मक रूप मे अवतीर्ण हुई जिसने मनुष्य के हृदय और बुद्धिपक्ष दोनो को सन्तुष्ट कर दिया। एक ओर कबीर के हठयोग की साधना रूपी सम-विषम शिलाओ से बँधा हुआ और दूसरी ओर जायसी के विशद प्रेमविरह की कोमलतम अनुभूतियो की वेला मे उन्मुक्त यह रहस्य का समुद्र आधुनिक युग को क्या दे सका है यह अभी कहना कठिन होगा। इतना निश्चित है कि इस वस्तु-वादप्रधान युग मे भी वह अनादृत नही हुआ चाहे इसका कारण मनुष्य की रहस्यो-न्मुख प्रवृत्ति हो और चाहे उसकी लौकिक रूपको मे सुन्दरतम अभिव्यक्ति।

इस बुद्धिवाद के युग मे मनुष्य भावपक्ष की सहायता से, अपने जीवन को कसने के लिए कोमल कसौटियाँ क्यो प्रस्तुत करे, भावना की साकारता के लिए अध्यात्म की पीठिका क्यो खोजता फिरे और फिर परोक्ष अध्यात्म को प्रत्यक्ष जगत मे क्यो प्रतिष्ठित करे यह सभी प्रश्न सामयिक है। पर इनका उत्तर केवल बुद्धि से दिया जा सकेगा ऐसा सम्भव नही जान पडता, क्योकि बुद्धि का प्रत्येक समाधान अपने साथ प्रश्नो की एक बडी सख्या उत्पन्न कर लेता है।

साधारणत अन्य व्यक्तियो के समान ही कवि की स्थिति भी प्रत्यक्ष जगत की व्यष्टि और समष्टि दोनो ही मे है। एक मे वह अपनी इकाई मे पूर्ण है और दूसरी मे वह अपनी इकाई से बाह्य जगत की इकाई को पूर्ण करता है। उसके अन्तर्जगत का विकास ऐसा होना आवश्यक है जो उसके व्यष्टिगत जीवन का विकास और परिष्कार करता हुआ समष्टिगत जीवन के साथ उसका सामञ्जस्य स्थापित कर दे। मनुष्य के पास इसके लिए केवल दो ही उपाय है, बुद्धि का विकास और भावना का परिष्कार। परन्तु केवल बौद्धिक निरूपण जीवन के मूल तत्त्वो की व्याख्या कर सकता है, उनका परिष्कार नही जो जीवन के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए अपेक्षित है और केवल भावना जीवन को गति दे सकती है दिशा नही।

भावातिरेक को हम अपनी क्रियाशीलता का एक विशिष्ट रूपान्तर मान सकते है जो एक ही क्षण मे हमारे सम्पूर्ण अन्तर्जगत को स्पर्श कर बाह्य जगत मे अपनी अभिव्यक्ति के लिए अस्थिर हो उठता है; पर बुद्धि के दिशानिर्देश के अभाव मे इस भावप्रवेग के लिए अपनी व्यापकता की सीमाये खोज लेना कठिन हो जाता है अत दोनो का उचित मात्रा मे सन्तुलन ही अपेक्षित रहेगा।

कवि ही नही प्रत्येक कलाकार को, अपने व्यष्टिगत जीवन को गहराई और समष्टिगत चेतना को विस्तार देनेवाली अनुभूतियो को भावना के साँचे मे ढालना पडा है। हमे निष्क्रिय बुद्धिवाद और स्पन्दनहीन वस्तुवाद के लम्बे पथ को पार कर कदाचित् फिर चिर सवेदनरूप सक्रिय भावना मे जीवन के परमाणु खोजने होगे ऐसी मेरी व्यक्तिगत धारणा है।

कविता के लिए आध्यात्मिक पृष्ठभूमि उचित है या नही इसका निर्णय व्यक्तिगत चेतना ही कर सकेगी। जो कुछ स्थूल, व्यक्त, प्रत्यक्ष और यथार्थ नही है यदि केवल वही अध्यात्म से अभिप्रेत है तो हमे वह सौन्दर्य्य, शील, शक्ति, प्रेम आदि की सभी सूक्ष्म भावनाओ मे फैला हुआ, अनेक अव्यक्त सत्य सम्बन्धी धारणाओ मे अंकुरित, इन्द्रियानुभूत प्रत्यक्ष की अपूर्णता से उत्पन्न उसीकी परोक्ष-रूप-भावना

मे छिपा हुआ और अपनी ऊर्ध्वगामी वृत्तियो से निर्मित विश्वबन्धुता, मानवधर्म आदि के ऊँचे आदर्शों मे अनुप्राणित मिलेगा। यदि परम्परागत धार्म्मिक रूढ़ियो को हम अध्यात्म की सज्ञा देते है तो उस रूप मे काव्य मे उसका महत्त्व नही रहता। इस कथन मे अध्यात्म को बलात् लोकसग्रही रूप देने का या उसकी ऐकान्तिक अनुभूति अस्वीकार करने का कोई आग्रह नही है। अवश्य ही वह अपने ऐकान्तिक रूप मे भी सफल है परन्तु इस अरूपरूप की अभिव्यक्ति लौकिक रूपको मे ही तो सम्भव हो सकेगी।

जायसी की परोक्षानुभूति चाहे जितनी ऐकान्तिक रही हो परन्तु उनकी मिलन-विरह की मधुर और मर्मस्पर्शिनी अभिव्यञ्जना क्या किसी लोकोत्तर लोक से रूपक लाई थी? हम चाहे आध्यात्मिक सकेतो से अपरिचित हो परन्तु उनकी लौकिक कलारूप सप्राणता से हमारा पूर्ण परिचय है। कबीर की ऐकान्तिक रहस्यानुभूति के सम्बन्ध मे भी यही सत्य है।

वास्तव मे लोक के विविध रूपो की एकता पर स्थित अनुभूतियाँ लोक-विरोधिनी नही होती, परन्तु ऐकान्तिक रूप के कारण अपनी व्यापकता के लिए वे व्यक्ति की कलात्मक सवेदनीयता पर अधिक आश्रित है। यदि यह अनुभूतियाँ हमारे ज्ञानक्षेत्र मे कुछ दार्शनिक सिद्धान्तो के रूप मे परिवर्तित न हो जावें, अध्यात्म की सूक्ष्म से स्थूल होती चलनेवाली पृष्ठभूमि पर धारणाओ की रूढि मात्र न बन जावे तो भावपक्ष मे प्रस्फुटित होकर जीवन और काव्य दोनो को एक परिष्कृत और अभिनव रूप देती है।

हमारी अन्त शक्ति भी एक रहस्य से पूर्ण है और बाह्यजगत का विकास-क्रम भी, अत' जीवन मे ऐसे अनेक क्षण आते रहते है जिनमें हम इस रहस्य के प्रति जागरूक हो जाते है। इस रहस्य का आभास या अनुभूति मनुष्य के लिए स्वाभाविक रही है अन्यथा हम सभी देशो के समृद्ध काव्य-साहित्य में किसी न किसी रूप में इस रहस्यभावना का परिचय न पाते। न वही काव्य हेय है जो अपनी साकारता के लिए केवल स्थूल और व्यक्त जगत पर आश्रित है और न वही जो अपनी सप्राणता के लिए रहस्यानुभूति पर। वास्तव मे दोनो ही मनुष्य के मानसिक जगत की मूर्त और बाह्य जगत की अमूर्त्त भावनाओ की कलात्मक समष्टि हैं। जब कोई कविता काव्यकला की सर्वमान्य कसौटी पर नही कसी जा सकती तब उसका कारण विषयविशेष न होकर कवि की असमर्थता ही रहती है।

पिछले छायापथ को पार कर हमारी कविता आज जिस नवीनता की ओर जा

रही है उसने अस्पष्टता आदि परिचित विशेषणो मे, सूक्ष्म की अभिव्यक्ति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव, यथार्थ से पलायनवृत्ति आदि नये जोड कर छायावाद को अतीत और वर्तमान से सम्बन्धहीन एक आकस्मिक आकाशचारी अस्तित्व देने का प्रयत्न किया है। इन आक्षेपो की अभी जीवन मे परीक्षा नही हो सकी है अत यह हमारे मानसिक जगत मे ही विशेष मूल्य रखते है।

कितने दीर्घकाल से वासनोन्मुख स्थूल सौन्दर्य्य का हमारे ऊपर कैसा अधिकार रहा है यह कहना व्यर्थ है। युगो से कवि को शरीर के अतिरिक्त और कही सौन्दर्य्य का लेश भी नही मिलता था और जो मिलता था वह उसीके प्रसाधन के लिए अस्तित्व रखता था। जीवन के निम्न स्तर से होता हुआ यह स्थूल, भक्ति की सात्विकता मे भी कितना गहरा स्थान बना सका है यह हमारे कृष्णकाव्य का शृगार-वर्णन प्रमाणित कर देगा।

यह तो स्पष्ट ही है कि खडीबोली का सौन्दर्यहीन इतिवृत्त उसे हिला भी न सकता था। छायावाद यदि अपने सम्पूर्ण प्राणप्रवेग से प्रकृति और जीवन के सूक्ष्म सौन्दर्य को असख्य रग रूपो मे अपनी भावना द्वारा सजीव करके उपस्थित न करता तो उस धारा को, जो प्रगतिवाद की विषम भूमि मे भी अपना स्थान ढूँढनी रहती है, मोडना कब सम्भव होता यह कहना कठिन है। मनुष्य की वासना को बिना स्पर्श किये हुए जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य्य को उसके समस्त सजीव वैभव के साथ चित्रित करने वाली उस युग की अनेक कृतियाँ किसी भी साहित्य को सम्मानित कर सकेगी।

फिर मेरे विचार मे तो सूक्ष्म के सम्बन्ध का कोलाहल सूक्ष्म से भी परिमाण मे अधिक हो गया है। छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया मे उत्पन्न हुआ था अत स्थूल को उसी रूप मे स्वीकार करना उसके लिये सम्भव न हो सका, परन्तु उसकी सौन्दर्य्य-दृष्टि स्थूल के आधार पर नही है यह कहना स्थूल की परिभाषा को सकीर्ण कर देना है। उसने जीवन के इतिवृत्तात्मक यथार्थ चित्र नही दिये, क्योकि वह स्थूल से उत्पन्न, सूक्ष्म सौन्दर्य्य-सत्ता की प्रतिक्रिया थी, अप्रत्यक्ष सूक्ष्म के प्रति उपेक्षित यथार्थ की नही जो आज की वस्तु है। परन्तु उसने अपनी क्षितिज से क्षितिज तक विस्तृत सूक्ष्म की सुन्दर और सजीव चित्रशाला मे हमारी दृष्टि को दौडा दौडा कर ही उसे विकृत जीवन की यथार्थता तक उतरने का पथ दिखाया। इसीसे छायावाद के सौन्दर्य्य-द्रष्टा की दृष्टि कुत्सित यथार्थ तक भी पहुँच सकी।

यह यथार्थ-दृष्टि यदि सक्रिय सौन्दर्य्य-सत्ता के प्रति नितान्त उदासीनता

या विरोध लेकर आती है तब उसमे निर्माण के परमाणु नही पनप सकते, इसका सजीव उदाहरण हमे अपनी विकृति के प्रति सजग पर सौन्दर्य्य-दृष्टि के प्रति उदासीन या विरोधी यथार्थदर्शियो के चित्रो की निष्क्रियता मे मिलेगा।

हमारी सामयिक समस्याओ के रूप भी छायायुग की छाया मे निखरे ही। राष्ट्रीय भावना को लेकर लिखे गए जय-पराजय के गान स्थूल के धरातल पर स्थित सूक्ष्म अनुभूतियो मे जो मार्मिकता ला सके है वह किसी और युग के राष्ट्रगीत दे सकेगे या नही इसमे सन्देह है। सामाजिक आधार पर 'वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी' मे तप पूत वैधव्य का जो चित्र है वह अपनी दिव्य लौकिकता मे अकेला है।

सूक्ष्म की सौन्दर्यानुभूति और रहस्यानुभूति पर आश्रित गीत-काव्य अपने लौकिक रूपको मे इतना परिचित और मर्मस्पर्शी हो सका कि उसके प्रवाह मे युगो से प्रचलित सस्ती भावुकतामूलक और वासना के विकृत चित्र देनेवाले गीत सहज ही बह गए। जीवन और कला के क्षेत्र मे इनके द्वारा जो परिष्कार हुआ है वह उपेक्षा के योग्य नही। पर अन्य युगो के समान इस युग में भी कुछ निर्जीव अनुकृतियां तो रहेगी ही।

जीवन की समष्टि मे सूक्ष्म से इतने भयभीत होने की आवश्यकता नही है क्योकि वह तो स्थूल से बाहर कही अस्तित्व ही नही रखता। अपने व्यक्त सत्य के साथ मनुष्य जो है और अपने अव्यक्त सत्य के साथ वह जो कुछ होने की भावना कर सकता है वही उसका स्थूल और सूक्ष्म है और यदि इनका ठीक सन्तुलन हो सके तो हमे एक परिपूर्ण मानव ही मिलेगा। जहाँ तक धर्मगत रूढ़िग्रस्त सूक्ष्म का प्रश्न है वह तो केवल विधिनिषेधमय सिद्धान्तो का संग्रह है जो अपने प्रयोग रूप को खोकर हमारे जीवन के विकास मे बाधक हो रहे है। उनके आधार पर यदि हम जीवन के सूक्ष्म को अस्वीकार करें तो हमें जीवन के ध्वस में लगे हुए विज्ञान के स्थूल को भी अस्वीकार कर देना चाहिए। अध्यात्म का जैसा विकास पिछले युगो मे हो चुका है विज्ञान का वैसा ही विकास आधुनिक युग में हो रहा है—एक जिस प्रकार मनुष्यता को नष्ट कर रहा है दूसरा उसी प्रकार मनुष्य को। परन्तु हम हृदय से जानते है कि अध्यात्म के सूक्ष्म और विज्ञान के स्थूल का समन्वय जीवन को स्वस्थ और सुन्दर बनाने में भी प्रयुक्त हो सकता है।

वह सूक्ष्म जिसके आधार पर एक कुत्सित से कुत्सित, कुरूप से कुरूप और दुर्बल से दुर्बल मानव, वानर या वनमानुस की पक्ति मे न खडा होकर सृष्टि में सुन्दरतम ही नही शक्ति और बुद्धि मे श्रेष्ठतम मानव के भी कन्धे से कन्धा मिला

कर उससे प्रेम और सहयोग की साधिकार याचना कर सकता है, वह सूक्ष्म जिसके सहारे जीवन की विषम अनेकरूपता मे भी एकता का तन्तु ढूँढकर हम उन रूपो मे सामञ्जस्य स्थापित कर सकते है, धर्म्म का रूढिगत सूक्ष्म न होकर जीवन का सूक्ष्म है। इससे रहित होकर स्थूल अपने भौतिकवाद द्वारा जीवन में वही विकृति उत्पन्न कर देगा जो अध्यात्मपरम्परा ने की थी।

छायावाद ने कोई रूढिगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धान्तो का सचय न देकर हमे केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य्य-सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था, इसीसे उसे यथार्थ रूप मे ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया।

सिद्धान्त एक के होकर सब के हो सकते है, अत हम उन्हे अपने चिन्तन मे ऐसा स्थान सहज ही दे देते है जहाँ वे हमारे जीवन से कुछ पृथक् ऐकान्तिक विकास पाते रहने को स्वतन्त्र है। परन्तु इन सिद्धान्तो से मुक्त जो सत्य है उसकी अनुभूति व्यक्तिगत ही सम्भव है और उस दशा मे वह प्राय हमारे सारे जीवन को अपनी कसौटी बनाने का प्रयत्न करता है। इसीसे स्थूल की अतल गहराई का अनुभव करने वाला देहात्मवादी मार्क्स भी अकेला ही है और अध्यात्म की स्थूलगत व्यापकता की अनुभूति रखनेवाला अध्यात्मवादी गाधी भी।

हमारा कवि भावित और अनुभूत सत्य की परिधि लाघ कर न जाने कितने अर्धपरीक्षित और अपरीक्षित सिद्धान्त बटोर लाया है और उनके मापदण्ड से उसे नापना चाहता है जिसका मापदण्ड उसका समग्र जीवन ही हो सकता था। अत. आज छायावाद के सूक्ष्म का खरा खोटापन कसने की कोई कसौटी नही है।

छायावाद का जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नही रहा यह निर्विवाद है परन्तु कवि के लिए यह दृष्टिकोण कितना आवश्यक है इस प्रश्न के कई उत्तर है।

वास्तव में जीवन के साथ इस दृष्टिकोण का वही सम्बन्ध है जो शरीर के साथ शरीर-विज्ञान का। एक शरीर के खण्ड खण्ड कर उसके सम्बन्ध मे सारा ज्ञातव्य जानकर भी उसके प्रति वीतराग रहता है, दूसरा जीवन को विभक्त कर उसके विविध रूप और मूल्य को जानकर भी हमे उसके प्रति अनुरक्ति नही देता। इस प्रकार यह बुद्धिप्रसूत चिन्तन मे ही अपना स्थान रखता है। इसीलिए कवि को इससे विपरीत एक रागात्मक दृष्टिकोण का सहारा लेना पडता है जिसके द्वारा वह जीवन के सुन्दर और कुत्सित को अपनी सवेदना मे रग कर देता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण जीवन का बौद्धिक मूल्य देता है, चित्र नही, और यदि देता भी है तो वे एक एक मासपेशी, शिरा, अस्थि आदि दिखाते हुए उस शरीर-चित्र के समान

रहते है जिसका उपयोग केवल शरीरविज्ञान के लिए है। आज का बुद्धिवादी युग चाहता है कि कवि बिना अपनी भावना का रग चढ़ाये यथार्थ का चित्र दे परन्तु इस यथार्थ का कला मे स्थान नही, क्योकि वह जीवन के किसी भी रूप से हमारा रागात्मक सम्बन्ध नही स्थापित कर सकता। उदाहरण के लिए हम एक महान और साधारण चित्रकार को ले सकते है। महान पहले यह जान लेगा कि किस दृष्टिकोण से एक वस्तु अपनी सहज मार्मिकता के साथ चित्रित की जा सकेगी और तब दो चार टेढी मेढी रेखाओ और दो एक रग के धब्बो से ही दो क्षण मे अपना चित्र समाप्त कर देगा, परन्तु साधारण एक एक रेखा को उचित स्थान पर बैठा बैठा कर उस वस्तु को ज्यो का त्यो कागज़ पर उतारने मे सारी शक्ति लगा देगा। यथार्थ का पूरा चित्र तो पिछला ही है परन्तु वह हमारे हृदय को छू न सकेगा। छू तो वही अधूरा सकता है जिसमे चित्रकार ने रेखा रेखा न मिला कर आत्मा मिलाई है। कवि की रचना भी ऐसे क्षण में होती है जिसमे वह जीवित ही नही अपने सम्पूर्ण प्राण-प्रवेग से वस्तुविशेष के साथ जीवित रहता है, इसीसे उसका शब्दगत चित्र अपनी परिचित इकाई मे भी नवीनता के स्तर पर स्तर और एक स्थिति में भी मार्मिकता के दल पर दल खोलता चलता है। कवि जीवन के निम्नतम स्तर से भी काव्य के उपादान ला सकता है, परन्तु वे उसीके होकर सफल अभिव्यक्ति करेगे और उसके रागात्मक दृष्टिकोण से ही सजीवता पा सकेगे।

यह रंगीन दृष्टिकोण वास्तव मे कुछ अस्वाभाविक भी नही है, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति और जाति के जीवन मे यह एक न एक समय आता ही रहता है। विशेष रूप से यह तारुण्य का द्योतक है जो चाँदनी के समान हमारे जीवन की कठोरता, कर्कशता, विषमता आदि को एक स्निग्धता से ढक देता है। जब हम पहले पहले जीवन-सग्राम मे प्रवृत्त होते हैं तब हम अपनी दृष्टि की रंगमयता से ही पथ के कुरूप पत्थरो को रगीन और साँस की सुरभि से ही काँटो को सुवासित करते चलते हैं। परन्तु जैसे जैसे सघर्ष से हमारे स्वप्न टूटते जाते हैं कल्पना के पंख झड़ते जाते है वैसे वैसे हमारे दृष्टिकोण की रगीनी फीकी पडती जाती है और अन्त में पलित केशो के साथ इसके भी रग घुल जाते हैं। यह उस वार्धक्य का सूचक है जिसमे हमे जीवन से न कुछ पाने की आशा रहती है और न देने का उत्साह। केवल जो कुछ पाया और दिया है उसीका हिसाब बुद्धि करती रहती है। जीवन या राष्ट्र के किसी भी महान स्वप्नद्रष्टा, नवनिर्माता या कलाकार में यह वार्धक्य सम्भव नही इसीसे आज न कवीन्द्र वृद्ध हैं न बापू। इनमें जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि-

कोण का अभाव नही किन्तु वह एक सृजनात्मक भावना से अनुशासित रहता है। विश्लेषणात्मक तथा प्रधानत बौद्धिक होने के कारण वैज्ञानिक दृष्टिकोण एक ओर जीवन के अखण्ड रूप की भावना नही कर सकता और दूसरी ओर चिन्तन मे ऐकान्तिक होता चला जाता है। उदाहरण के लिए हम अपनी राष्ट्र या जनवाद की भावना ले सकते है जो हमारे युग की विशेष देन है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हम अपने देश के प्रत्येक भूखण्ड के सम्बन्ध मे सब ज्ञातव्य जान कर मनुष्य के साथ उसका बौद्धिक मूल्य आँक सकेगे और वर्ग उपवर्गो मे विभक्त मानव-जीवन के सब रूपो का विश्लेषणात्मक परिचय प्राप्त कर उसके सम्बन्ध मे बौद्धिक निरूपण दे सकेगे, परन्तु खण्ड खण्ड मे व्याप्त एक विशाल राष्ट्रभावना और व्यष्टि व्यष्टि मे व्याप्त एक विराट जनभावना हमे इस दृष्टिकोण से ही नही मिल सकती। केवल भारतवर्ष के मानचित्र बाँट कर जिस प्रकार राष्ट्रीय भावना जागृत करना सम्भव नही है, केवल शतरज के मोहरो के समान व्यक्तियो को हटा बढा कर जैसे जनभावना का विकास कठिन है, केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जीवन की गहराई और विस्तार नाप लेना भी वैसा ही दुस्तर कार्य है। इसीसे प्रत्येक युग के निर्माता को यथार्थ-द्रष्टा ही नही स्वप्न-सृष्टा भी होना पडता है।

छायावाद के कवि को एक नये सौन्दर्य्य-लोक मे ही यह भावात्मक दृष्टिकोण मिला, जीवन मे नही, इसीसे वह अपूर्ण है, परन्तु यदि इसी कारण हम उसके स्थान मे केवल बौद्धिक दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा कर जीवन को पूर्णता मे देखना चाहेगे तो हम भी असफल ही रहेगे।

पलायनवृत्ति के सम्बन्ध मे हमारी यह धारणा बन गई है कि वह जीवन-सग्राम में असमर्थ छायावाद की अपनी विशेषता है। सत्य तो यह है कि युगो से, परिचित से अपरिचित, भौतिक से अध्यात्म, भाव से बुद्धिपक्ष, यथार्थ से आदर्श आदि की ओर मनुष्य को ले जाने और इसी क्रम से लौटाने का बहुत कुछ श्रेय इसी पलायनवृत्ति को दिया जा सकता है। यथार्थ का सामना न कर सकनेवाली दुर्बलता ही इसे जन्म देती है यह कथन कितना अपरीक्षित है इसका सबल प्रमाण हमारा चिन्तनप्रधान ज्ञान-युग दे सकेगा। उस समय न जाति किसी कठोर सघर्ष से निश्चेष्ट थी न किसी सर्वग्रासिनी हार से निर्जीव, न उसका घर धन-धान्य से शून्य था और न जीवन सुख-सन्तोष से, न उसके सामने सामाजिक विकृति थी और न सास्कृतिक ध्वस। परन्तु इन सुविधाओ से अति परिचय के कारण उसका तारुण्य, भौतिक को भूल कर चिन्तन के नवीन लोक मे भटक गया और उपनिषदो

मे उसने अपने ज्ञान का ऐसा सूक्ष्म विस्तार किया कि उसके बुद्धिजीवी जीवन को फिर से स्थूल की ओर लौटना पडा।

व्यक्ति के जीवन मे भी यह पलायनवृत्ति इतनी ही स्पष्ट है। सिद्धार्थ ने जीवन के सघर्षों मे पराजित होने के कारण महाप्रस्थान नही किया, भौतिक सुखो के अति परिचय ने ही थका कर उनकी जीवनधारा को दूसरी ओर मोड दिया था। आज भी व्यावहारिक जीवन मे, पढने से जी चुराने वाले विद्यार्थी को जब हम खिलौनो से घेर कर छोड देते है तब कुछ दिनो के उपरान्त वह स्वय पुस्तको के लिए विकल हो जाता है। जीवन के और साधारण स्तर पर भी हमारी इस धारणा का समर्थन हो सकेगा। चिडियो से खेत की रक्षा करने के लिए मचान पर बैठा हुआ कृषक जब अचानक खेत और चिडियो को भूल कर बिरहा या चैती गा उठता है तब उसमे खेत-खलिहान की कथा न कह कर अपनी किसी मिलन-विरह की स्मृति ही दोहराता है। चक्की के कठिन पाषाण को अपनी साँसो से कोमल बनाने का निष्फल प्रयत्न करती हुई दरिद्र स्त्री, जब इस प्रयास को रागमय करती है तो उसमे चक्की और अन्न की बात न होकर किसी आम्रवन मे पडे भूले की मार्मिक कहानी रहती है। इसे चाहे हम यथार्थ की पूर्ति कहे चाहे उससे पलायन की वृत्ति परन्तु वह परिभाषातीत मन की एक आवश्यक प्रेरणा तो है ही।

छायावाद के जन्मकाल में मध्यम वर्ग की ऐसी क्रान्ति नहीं थी। आर्थिक प्रश्न इतना उग्र नही था, सामाजिक विषमताओ के प्रति हम सम्पूर्ण क्षोभ के साथ आज के समान जागृत भी नही हुए थे और हमारे सास्कृतिक दृष्टिकोण पर असन्तोष का इतना स्याह रग भी नही चढा था। तब हम कैसे कह सकते है कि केवल सघर्षमय यथार्थ जीवन से पलायन के लिए ही उस वर्ग के कवियो ने एक सूक्ष्म भावजगत को अपनाया। हम केवल इतना कह सकते है कि उन परिस्थितियो ने आज की निराशा के लिए धरातल बनाया।

उस युग के कतिपय कवियो की कोमल भावनाये तो कारागार की कठोर भित्तियो से टकरा कर भी कर्कश नही हो सकी, परन्तु इसी कोमलता के आधार पर हम उन कवियो को जीवन-सघर्ष मे असमर्थ नही ठहरा सकेंगे।

छायावाद के आरम्भ मे जो विकृति थी आज वह शतगुण हो गई है। उस समय की क्रान्ति की चिनगारी सहस्र सहस्र लपटो मे फैल कर हमारे जीवन को क्षार किये दे रही है। परन्तु आज भी तो हम अपने शान्त चिन्तन मे बुद्धि से खराद खराद कर सिद्धातो के मणि ही बना रहे है। हमारे सिद्धान्तो की चरणपीठ

बन कर ही जो यथार्थ आ सका है उसे भी हमारे हृदय के बन्द द्वार से टकरा टकरा कर ही लौटना पड रहा है। वास्तव मे हमने जीवन को उसके सक्रिय सवेदन के साथ न स्वीकार करके एक विशेष बौद्धिक दृष्टिकोण से छू भर दिया है। इसीसे जैसे यथार्थ से साक्षात् करने मे असमर्थ छायावाद का भावपक्ष मे पलायन सम्भव है, उसी प्रकार यथार्थ की सक्रियता स्वीकार करने मे असमर्थ प्रगतिवाद का चिन्तन मे पलायन सहज है। और यदि विचार कर देखा जाय तो जीवन से केवल भावजगत मे पलायन उतना हानिकर नही जितना जीवन से केवल बुद्धिपक्ष मे पलायन, क्योकि एक हमारे कुछ क्षणो को गतिशील कर जाता है और दूसरा हमारा सम्पूर्ण सक्रिय जीवन माग लेता है।

यदि इन सब उलझनो को पार कर हम पिछले और आज के काव्य की एक विस्तृत धरातल पर उदार दृष्टिकोण से परीक्षा करे तो हमे दोनो मे जीवन के निर्माण और प्रसाधन के सूक्ष्म तत्त्व मिल सकेगे। जिस युग मे कवि के एक ओर परिचित और उत्तेजक स्थूल था और दूसरी ओर आदर्श और उपदेशप्रवण इतिवृत्त, उसी युग मे उसने भावजगत और सूक्ष्म सौन्दर्य्य-सत्ता की खोज की थी। आज वह भावजगत के कोने कोने और सूक्ष्म सौन्दर्य्यगत चेतना के अणु अणु से परिचित हो चुका है, अत स्थूल व्यक्त उसकी दृष्टि को विराम देगा। यदि हम पहले मिली सौन्दर्य्य-दृष्टि और आज की यथार्थ-सृष्टि का समन्वय कर सके, पिछली सक्रिय भावना से बुद्धिवाद की शुष्कता को स्निग्ध बना सके और पिछली सूक्ष्म चेतना की व्यापक मानवता मे प्राण-प्रतिष्ठा कर सके तो जीवन का सामञ्जस्यपूर्ण चित्र दे सकेंगे। परन्तु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के समान कविता का भविष्य भी अभी अनिश्चित ही है। पिछले युग की कविता अपनी ऐश्वर्य-राशि मे निश्चल है और आज की, प्रतिक्रियात्मक विरोध मे गतिवती। समय का प्रवाह जब इस प्रतिक्रिया को स्निग्ध और विरोध को कोमल बना देगा तब हम इनका उचित समन्वय कर सकेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

साधारणत. नवीन काव्यधारा ने अभी छायावाद की बाह्य रूपरेखा नही छोडी, केवल शब्दावली, छन्द, ध्वनि आदि मे एक निरन्तर सतर्क शिथिलता लाकर उसे विशेषता मान लिया है। अपने प्रारम्भिक रूप में ही यह रचनाएँ पर्याप्त भिन्नता रखती हैं जिससे हम उनमे व्यक्त विभिन्न विचारधाराओ से सहज ही परिचित हो सकते हैं। इस काव्य की एक धारा ऐसी चिन्तनप्रधान रचनाओ को जन्म दे रही है जिनमें एक ओर विविध बौद्धिक निरूपणो के द्वारा कुछ प्रचलित सिद्धान्तो

का प्रतिपादन होता चलता है और दूसरी ओर पीडित मानवता के प्रति बौद्धिक सहानुभूति का व्यक्तीकरण। इन रचनाओ के मूल मे वर्तमान व्यवस्थाओ की प्रतिक्रिया अवश्य है परन्तु वह मनुष्य की रागात्मक वृत्तियो मे उत्पन्न न होकर उसके ठढे चिन्तन मे जन्म और विकास पाती है, अत' उसमे आवश्यक भावप्रवेग का नितान्त अभाव स्वाभाविक ही है।

दूसरी धारा मे पिछले वर्षों के राष्ट्रीय गीतो की परम्परा ही कुछ अतिशयोक्ति और उलटफेर के साथ व्यक्त हो रही है। ऐसी रचनाओ मे कवि का अहकार स्वानुभूत न होकर रूढि मात्र बन गया है, इसीसे वह प्रलयकर, महानाश की ज्वाला आदि रूपको मे व्यक्त क्षणिक उत्तेजना मे फुलझडी के समान जलता बुझता रहता हैं। असख्य निर्जीव आवृत्तियो के कारण यह शब्दावली अपना प्रभाव खो चुकी है, कवि जब तक सच्चाई के साथ इनमे अपने प्राण नही फूँक देता तब तक यह कविता के क्षेत्र मे विशेष महत्त्व नही पाती।

तीसरी काव्यधारा की रूपरेखा आदर्शवाद की विरोध-भावना से बनी है। इसमे एक ओर यथार्थ की छाया मे वासना के वे नग्न चित्र है जो मूलत. हमारी सामाजिक विकृति से सम्बन्ध रखते है और दूसरी ओर जीवन के वे घृणित कुत्सित रूप जो हमारी समष्टिगत चेतना के अभाव से उत्पन्न है। एक में भावना की परिणति का अभाव है और दूसरे मे सवेदनीय अनुभूति का, अत. यह कृतियाँ हमारे सामने केवल एक विचित्र चित्रशाला प्रस्तुत करती हैं। यथार्थ का काव्यगत चित्रण सहज होता है यह धारणा भ्रान्तिमूलक ही प्रमाणित होगी। वास्तव मे यथार्थ के चितेरे को अपनी अनुभूतियो के हल्के से हल्के और गहरे से गहरे रंगो के प्रयोग मे बहुत सावधान रहना पडता है, क्योकि उसका चित्र आदर्श के समान न अस्पष्ट होकर अग्राह्य हो सकता है और न व्यक्तिगत भावना मे बहुरगी। वह प्रकृत न होने पर विकृत के अनेक रूपरूपान्तरो मे से किसी एक मे प्रतिष्ठित होगा ही। यथार्थ की कविता को जीवन के उस स्तर पर रहना पडता है जहाँ से वह हमे जीवन के भिन्नवर्णी चित्र ही नही देती, प्रत्युत उनमे व्यक्त जीवन के प्रति एक प्रतिक्रिया-त्मक सवेदन भी देती है। घृणित कुत्सित के प्रति हमारी करुण सवेदना की प्रगति और क्रूर कठोर के विरुद्ध हमारी कोमलभावना की जागृति, यथार्थ का ही वरदान है। परन्तु अपनी विकृति मे यथार्थवाद ने हमे क्या दिया है इसे जानने के लिए हम अपने नैतिकपतन के नग्न रूप पर आश्रित साहित्य को देख सकते हैं।

भविष्य मे प्रगतिवाद की जो दिशा होगी उसकी कल्पना अभी समीचीन नहीं

हो सकती। इतना स्पष्ट है कि यह श्रमिको की वाणी मे बोलनेवाली कविता मध्यम वर्ग के कण्ठ से उत्पन्न हो रही है, अत इसे समझने के लिए उसी वर्ग की पृष्ठभूमि चाहिए। हमारा जातीय इतिहास प्रमाणित कर देगा कि सास्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हुए भी यह वर्ग बदलती हुई परिस्थितियो से उच्चवर्ग की अपेक्षा अधिक प्रभावित होता है। सख्या मे हल्के और सुविधाओ मे भारी उच्चवर्ग ने किसी भी सघर्ष मे अपनी स्थिति मे कोई विशेष परिवर्तन नही किया है। मध्य-युग मे विजेताओ से कुछ समय तक सघर्ष कर तथा सख्या मे कुछ घट कर जब उच्चवर्ग फिर पुरानी स्थिति मे आ गया तब मध्यम वर्ग की समस्याये ज्यो की त्यो थी। उनमे से कुछ ने राजदरबारो मे शृगार और विलास के राग गाये, कुछ ने जीवन को भक्ति और ज्ञान की पूत धाराओ मे निमज्जित कर डाला और कुछ फारसी पढ़ पढ कर मुशी बनने लगे।

उसके उपरान्त फिर इसी इतिहास की आवृत्ति हुई। जब उच्चवर्ग नये पाश्चात्य शासको की वरद छाया मे अपने पुराने फीके जीवन पर नई सभ्यता का सुनहला पानी फेर रहा था तब मध्यम वर्ग मे अधिकाश के जीवन मे अग्रेज़ी सीख कर केवल क्लर्क बनने की साधना वेगवती होती जा रही थी। इस साधना की सफलता ने उसे यन्त्र मात्र ही रहने दिया, पर तब भी उसकी यह धारणा न मिटी कि उसका और उसकी सतान का कल्याण केवल इसी दिशा मे रक्षित है।

इस बीच मे सामाजिक तथा सास्कृतिक विकास के लिए नई प्रेरणा मिलने का कहीं अवकाश ही न था। पुरानी जीर्णशीर्ण व्यवस्थाओ के भीतर हमारा सामाजिक जीवन उत्तरोत्तर विकृत होने लगा। सस्कृति के नाम पर जो कुछ प्रचलित रूढ़ियाँ थी वे जीवन मे और कोई द्वार न पाकर धर्म्म और साहित्य मे फैलने लगी। इस पक में कमल भी खिले अवश्य, परन्तु इससे जल की पकिलता मे अन्तर नही पडता।

ऐसे ही समय मे भारतेन्दु-युग की कविता मे बिखरे देशप्रेम को हमारी राष्ट्रीय भावना मे विकास पाने का अवसर मिला। साधारणत जीवन की व्यष्टिगत चेतना के पश्चात् ही समष्टिगत राष्ट्रीय चेतना का उदय होना चाहिए। परन्तु साधन और समय के अभाव मे हम इस चेतना का आवाहन केवल असुविधाओ के भौतिक धरातल पर ही कर सके, इसीसे शताब्दियो से निर्जीवप्राय जनसमूह सक्रिय चेतना लेकर पूर्ण रूप से अब तक न जाग सका।

मध्यवर्ग का इस जागृति मे क्या स्थान है यह बताने की आवश्यकता नही

परन्तु इसके उपरान्त भी उसकी स्थिति अनिश्चित और जटिलतर होती गई। हमारी राष्ट्रीय चेतना एक विशेष राजनैतिक ध्येय को लेकर जागृत हुई थी, अत जीवन की उन अन्य व्यवस्थाओ की ओर ध्यान देने का उसे अवकाश ही नही मिला जो जीवन की व्यष्टिगत चेतना से सम्बन्ध रखती थी।

यह स्वाभाविक ही था कि जीवन की बाह्य व्यवस्था मे विकास न होने के कारण हमारी सब प्रवृत्तियाँ और मनोवृत्तियाँ अन्तर्मुखी होकर हमारे भावजगत को अत्यधिक समृद्ध कर देती। छायावाद और रहस्यवाद के अन्तर्गत सूक्ष्मतम अनुभूतियो के कोमलतम मूर्त्त रूप, भावना के हल्के रगो का वैचित्र्य, वेदना की गहरी रेखाओ की विविधता, करुणा का अतल गाम्भीर्य्य और सौन्दर्य्य का असीम विस्तार हमारी उपर्युक्त धारणा का समर्थन कर देते है। परन्तु इन सौन्दर्य्य और भावना के पुजारियो को भी उसी निष्क्रिय सस्कृति और निष्प्राण सामाजिकता मे से ही अपना पथ खोजना पडा है। वे मध्य युग के सन्त नही है 'जो स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ-गाथा' कह कर बाह्य जीवन-जनित निराशा से बच जाते।

इनके साथ उस नवीन पीढी का उल्लेख भी उचित होगा जो रूढिग्रस्त मध्य-वर्ग मे पली और जीवन का अधिकाश जीवन को भुलाने मे बिता कर ससारयात्रा के लिए केवल स्वप्न और भावुकता का सम्बल लिए हुए विद्यालयो से बाहर आई। जीवन की व्यवस्था मे अपनी स्वप्न-सृष्टि का कोई स्थान न पाकर उसकी मानसिक स्थिति मे जो परिवर्तन हुआ वह अनेकरूपी है। इनमे से कुछ के अनमिल स्वर हमें छायावाद की रागिनी मे सुन पडते है और कुछ के प्रगतिवाद के शख में। साम्यवाद, समाजवाद आदि विचारधाराओ से भी यह प्रवाह में पड़े हुए पत्थर हो रहे हैं।

इस प्रकार के सामूहिक असन्तोष और निराशा की पृष्ठभूमि पर जो प्रतिक्रियात्मक काव्य रचना हो रही है वह बौद्धिक निरूपणो से बोझिल है। जिन व्यवस्थाओ मे जीवन का उपयुक्त समाधान नही मिला उसकी कला-कसौटियो और काव्य के उपादानो पर उसे खीझ है। वास्तव मे इस प्रगति के भीतर मध्यवर्ग की क्रान्ति ही गतिशील है। कवियो ने कुछ साम्यवाद के प्रतीको के रूप में, कुछ ग्रामो की ओर लौटने की देशव्यापी पुकार से प्रभावित होकर और कुछ अपनी सहज सवेदना से, जिस पीडित, दलित और अपनी वेदना मे मूर्च्छित वर्ग को काव्य का विषय बनाया है उसके जीवन मे वे घुलमिल नही सके, इसीसे कहीं वह बुद्धि की दौड के लिए मैदान बन जाता है, कही भावनाओ को टाँगने के लिए खूँटी का काम देता है और कही निर्जीव चित्रो के लिए चेतनाहीन आधार बनकर ही सफलता

पाता है। अवश्य ही करुणा को भी रुला देने वाले इस जीवन के कुछ सजीव चित्रण हुए है परन्तु वे नियम के अपवाद जैसे हैं।

इतिहास के क्रम मे हमारी विचार-शृखला की कडी बन कर तो यह प्रगतिवाद सदा ही रह सकता है पर काव्य मे अपनी प्रतिष्ठा के लिए उसे कला की रूपरेखा मे बँधना ही पडेगा। छायावाद युग की सूक्ष्म अनुभूतियो की अभिव्यञ्जना-शैली चाहे उसके लिए उपयुक्त न हो, परन्तु कला के उस सहज, सरल और स्वाभाविक सौन्दर्य्य के प्रति उसकी सतर्क विरक्ति उचित नही जो जीवन के घृणित, कुत्सित रूप के प्रति भी हमारी ममता को जगा सकती है।

इसके अतिरिक्त विचारो के प्रसार और प्रचार के अनेक वैज्ञानिक साधनो से युक्त युग मे, गद्य का उत्तरोत्तर परिष्कृत होता चलनेवाला रूप रहते हुए, हमे अपने केवल बौद्धिक निरूपणो और वादविशेष सम्बन्धी सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिए कविता की सहायता की आवश्यकता नही रही। चाणक्य की नीति वीणा पर गाई जा सकती है, परन्तु इस प्रकार वह न नीति की कोटि मे आ सकती है और न गीत की सीमा में, इसे जानकर ही इस बुद्धिवादी युग को हम कुछ दे सकेगे।

इस युग के कवि के सामने जो विषम परिस्थितियाँ है उन पर मै रग फेरना नही चाहती। आज सगठित जाति वीरगाथाकालीन युद्ध के लिए नही सज्जित हो रही है जो कवि चारणो के समान कडखो से उसे उत्तेजित मात्र करके सफल हो सके, वह ऐश्वर्यराशि पर बैठी पराजय भुलाने के साधन नही ढूँढ रही है जो कवि विलास की मदिरा ढाल ढाल कर अपने आपको भूल सके और वह कठोर सघर्ष से क्षामकण्ठ भी नही है जो कवि अध्यात्म की सुधा से उसकी प्यास बुझा सके।

वास्तव मे वह तो जीवन और चेतना के ऐसे विषम खण्डो मे फूट कर बिखर गई है जो सामञ्जस्य को जन्म देने मे असमर्थ परस्पर विरोधी उपकरणो से बने जान पडते है। इसका कारण कुछ तो हमारा व्यक्तिप्रधान युग है और कुछ वह प्रवृत्ति जो हमे जीवन से कुछ न सीख कर अध्ययन से सब कुछ सीखने को वाध्य करती है। हम ससार भर की विचारधाराओ मे जीवन के मापदण्ड खोजते खोजते जीवन ही खो चुके है, अत आज हम उन निर्जीव मापदण्डो की समष्टि मात्र है।

कवि के एक ओर अगणित वर्ग उपवर्गों मे खण्डित मुट्ठी भर मनुष्यो की ज्ञान-राशि है और दूसरी ओर रूढियो मे अचल, असख्य निर्जीव पिण्डो मे बिखरे मानव का अज्ञान-पुञ्ज। एक अपने विशेष सिद्धान्तो के प्रचार के लिए कवि का कण्ठ खरीदने को प्रस्तुत है और दूसरा उसकी वाणी से उतना अर्थ निकाल लेना भी

नही जानता जितना वह अपने आँगन मे बोलनेवाले काक के शब्द का निकाल लेता है। एक ओर राजनैतिक उसे निष्क्रिय समझता है, दूसरी ओर समाज-सुधारक उसे अबोध कहता है। इसके अतिरिक्त उसका व्यक्तिगत जीवन भी है जिसके सब सुनहले स्वप्नो और रगीन कल्पनाओ पर, व्यापक विषमता से निराशा की कालिमा फैलती जाती है।

इस युग का कवि हृदयवादी हो या बुद्धिवादी, स्वप्नद्रष्टा हो या यथार्थ का चित्रकार, अध्यात्म से बँधा हो या भौतिकता का अनुगत, उसके निकट यही एक मार्ग शेष है कि वह अध्ययन मे मिली जीवन की चित्रशाला से बाहर आकर, जड सिद्धान्तो का पाथेय छोडकर अपनी सम्पूर्ण सवेदन शक्ति के साथ जीवन मे घुल मिल जावे। उसकी केवल व्यक्तिगत सुविधा असुविधा आज गौण है, उसकी केवल व्यक्तिगत हार-जीत आज मूल्य नही रखती, क्योकि उसके सारे व्यष्टिगत सत्य की आज समष्टिगत परीक्षा है। ऐसी क्रान्ति के अवसर पर सच्चे कलाकार पर—'पीर बवर्ची भिश्ती खर' की कहावत चरितार्थ हो जाती है—उसे स्वप्न-द्रष्टा भी होना है, जीवन के क्षुत्क्षाम निम्न स्तर तक मानसिक खाद्य भी पहुँचाना है, तृषित मानवता को सवेदना का जल भी देना है और सब के अज्ञान का भार भी सहना है। उसीके हृदय के तार इतने खिचे सधे होते है कि हल्की सी साँस से भी झकृत हो सके, उसीके जीवन मे इतनी विशालता सम्भव है कि उसमे सबके वर्गभेद एक होकर समा सके और उसीकी भावना का अञ्चल इतना अछोर बन सकता है कि सबके आँसू और हँसी सचित कर सके। साराश यह कि आज के कवि को अपने लिए अनागारिक होकर भी ससार के लिए गृही, अपने प्रति वीतराग होकर भी सबके प्रति अनुरागी, अपने लिए सन्यासी होकर भी सबके लिए कर्म्मयोगी होना होगा, क्योकि आज उसे अपने आपको खोकर पाना है।

युगयुगान्तर से कवि जीवन के जिस कलात्मक रूप की भावना करता आ रहा है आज उसे यदि मानवता के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचाना है तो उसका कार्य्य उस युग से सहस्र गुण कठिन है जब वह इस भावना को कुछ भावप्रवण मानवो को सहज ही सौप सकता था। वह सौन्दर्य्य और भावना की विराट बिबि-धता से भरे कलाभवन को जला कर अपने पथ को सहज और कार्य को सरल कर सकता है, क्योकि तब उसे जीवन को निम्न स्तर पर केवल ग्रहण कर लेना होगा, उसे नई दिशा में ले जाना नही; परन्तु यह उसके अन्याय का कोई प्रतिकार नहीं है। फिर जब सज्ञाहीन मानवता अपनी सक्रिय चेतना लेकर जागेगी तब वह इस

प्रासाद के भीतर झाँकना ही चाहेगी जिसके द्वार उसके लिए इतने दीर्घकाल से रुद्ध रहे है। वह मनुष्य जिसने युगो के समुद्र के समुद्र बह जाने पर भी एक कलात्मक पत्थर का खण्ड नही बह जाने दिया, असीम शून्य मे अनन्त स्वरो की लहरो पर लहरें मिट जाने पर भी एक कलात्मक पक्ति नही खोई, ऐसा खँडहर पाकर हमारे प्रति कृतज्ञ होकर कुछ और माँगेगा या नही इसका प्रमाण अन्य जागृत देश दे सकेगे।

मनुष्य मे कल्याणी कला का छोटा से छोटा अकुर उगाने के लिए भी आज के कवि को सम्पूर्ण जीवन की खाद प्रसन्नता से देनी होगी इसमे मुझे सदेह नही है।

और अपने सम्बन्ध मे क्या कहूँ!

एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव सस्कारो के बोझ से जडीभूत वर्ग मे मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर, कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने अपने सस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमे भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय मे न बँधनेवाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर, माँ से पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदो के सगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा मे पद-रचना आरम्भ की थी। मेरे प्रथम हिन्दी-गुरु भी ब्रजभाषा के ही समर्थक निकले, अत. उलटी-सीधी पद-रचना छोडकर मैंने समस्या-पूर्त्तियो मे मन लगाया। बचपन में जब पहले पहले खडीबोली की कविता से मेरा परिचय पत्रिकाओ द्वारा हुआ तब उसमें बोलने की भाषा मे ही लिखने की सुविधा देखकर मेरा अबोध मन उसी ओर उत्तरोत्तर आकृष्ट होने लगा। गुरु उसे कविता ही न मानते थे अत छिपा छिपा कर मैंने रोला और हरिगीतिका में भी लिखने का प्रयत्न आरम्भ किया। माँ से सुनी एक करुण कथा का प्राय सौ छन्दो मे वर्णन कर मैंने मानो खण्डकाव्य लिखने की इच्छा भी पूर्ण कर ली। बचपन की वह विचित्र कृति कदाचित् खो गई है। उसके उपरान्त ही बाह्य जीवन के दु खो की ओर मेरा विशेष ध्यान जाने लगा था। पडोस की एक विधवा वधू के जीवन से प्रभावित होकर मैंने 'अबला', 'विधवा' आदि शीर्षको से उस जीवन के जो शब्दचित्र दिये थे वे उस समय की पत्रिकाओ मे भी स्थान पा सके। पर जब मैं अपनी विचित्र कृतियो तथा तूलिका और रगो को छोड कर विधिवत् अध्ययन के लिए बाहर आई तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की

किरणे फैलने लगी थी, अत उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'शृंगारमयी अनुरागमयी भारत जननी भारत माता', 'तेरी उतारूँ आरती माँ भारती' आदि जिन रचनाओ की सृष्टि की वे विद्यालय के वातावरण मे ही खो जाने के लिए लिखी गई थी। उनकी समाप्ति के साथ ही मेरी कविता का शैशव भी समाप्त हो गया।

इस समय से मेरी प्रवृत्ति एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख हुई जिसमे व्यष्टि-गत दु ख समष्टिगत गभीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आभास देने लगा। कहना नही होगा कि इस दिशा मे मेरे मन को वही विश्राम मिला जो पक्षि-शावक को कई बार गिर उठ कर अपने पखो को सँभाल लेने पर मिलता होगा। नीहार का अधिकाश मेरे मैट्रिक होने के पहले लिखा गया है, अत उतनी कम विद्याबुद्धि से पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन की कोई सुविधा न मिल सकना ही स्वाभाविक था। बँगला न जानने के कारण उसकी नवीन काव्यधारा से निकट परिचय प्राप्त करने के साधनो का भी अभाव रहा। ऐसी दशा मे मेरी काव्यजिज्ञासा कुछ तो प्राचीन साहित्य और दर्शन मे सीमित रही और कुछ सन्तयुग की रहस्यात्मक आत्मा से लेकर छायावाद के कोमल कलेवर तक फैल गई। करुणाबहुल होने के कारण बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है। उस समय मिले हुए संस्कारो और प्रेरणा का मैंने कभी विश्लेषण नही किया है इसलिए उनके सम्बन्ध में क्या बताऊँ। इतना निश्चितरूप से कह सकती हूँ कि मेरे जीवन ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था और आगे चलकर अध्ययन और ज्ञान की परिधि के विस्तार मे भी उसे खोया नही वरन् उसमे नवीनता ही पाई।

मेरे सम्पूर्ण मानसिक विकास मे उस बुद्धिप्रसूत चिन्तन का भी विशेष महत्त्व है जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओ के अध्ययन मे गति पाता रहा है। अनेक सामाजिक रूढियो मे दबे हुए, निर्जीव सस्कारो का भार ढोते हुए और विविध विषमताओ मे साँस लेने का भी अवकाश न पाते हुए जीवन के ज्ञान ने मेरे भावजगत की वेदना को गहराई और जीवन को क्रिया दी है। उसके बौद्धिक निरूपण के लिए मैंने गद्य को स्वीकार किया था परन्तु उसका अधिकाश अभी अप्रकाशित ही है।

ऐसी निष्क्रिय विकृति के साथ जब इतना बढा हुआ अज्ञान होता है तब शान्त बौद्धिक निरूपणो का स्थान क्रिया को न देना वैसा ही है जैसा जलते हुए घर में बैठकर लपटो को बुझने की आज्ञा देना, इस अनुभूति के कारण मैंने

व्यक्तिगत सुविधायें न खोज कर जीवन के आर्त्तक्रन्दन से भरे कोलाहल के बीच मे खडा रहना ही स्वीकार किया है। निरन्तर एक स्पन्दित मृत्यु की छाया मे चलते हुए मेरे अस्वस्थ शरीर और व्यस्त जीवन को जब कुछ क्षण मिल जाते है तब वह एक अमर चेतना और व्यापक करुणा से तादात्म्य करके अपने आगे बढने की शक्ति प्राप्त करता है, इसीसे मेरी सम्पूर्ण कविता का रचनाकाल कुछ घंटो ही से सीमित किया जा सकता है। प्राय ऐसी कविताएँ कम है जिनके लिखते समय मैंने रात्ति मे चौकीदार की सजग वाणी या किसी अकेले जाते हुए पथिक के गीत की कोई कडी नही सुनी।

इस बुद्धिवाद के युग मे भी मुझे जिस अध्यात्म की आवश्यकता है वह किसी रूढि, धर्म्म या सम्प्रदायगत न होकर उस सूक्ष्मसत्ता की परिभाषा है जो व्यष्टि की सप्राणता मे समष्टिगत एकप्राणता का आभास देती है और इस प्रकार वह मेरे सम्पर्ण जीवन का ऐसा सक्रिय पूरक है जो जीवन के सब रूपो के प्रति मेरी ममता समान रूप से जगा सकता है। जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण मे निराशा का कुहरा है या व्यथा की आर्द्रता यह दूसरे ही बता सकेंगे, परन्तु हृदय मे तो मैं आज निराशा का कोई स्पर्श नही पाती, केवल एक गम्भीर करुणा की छाया ही देखती हूँ।

साहित्य मेरे सम्पूर्ण जीवन की साधना नही है यह स्वीकार करने मे मुझे लज्जा नही। आज हमारे जीवन का धरातल इतना विषम है कि एक पर्वत के शिखर पर बोलता है और दूसरा कूप की अतल गहराई मे सुनता है। इस मानव-समष्टि मे जिसमे सात प्रति शत साक्षर और एक प्रति शत से भी कम काव्य के मर्मज्ञ है हमारा बौद्धिक निरूपण कुण्ठित और कलागत सृष्टि पखहीन है। शेष के पास हम अपनी प्रसाधित कलात्मकता, और बौद्धिक ऐश्वर्य छोड कर व्यक्ति-मात्र होकर ही पहुँच सकते है। बाहर के वैषम्य और सघर्ष से थकित मेरे जीवन को जिन क्षणो मे विश्राम मिलता है उन्ही को कलात्मक कलेवर मे स्थिर कर मैं समय समय पर उनके पास पहुँचाती ही रही हूँ जिनके निकट उनका कुछ मूल्य है। शेष जीवन को जहाँ देने की आवश्यकता है वहाँ उसे देने मे मेरा मन कभी कुण्ठित नही होगा। मेरी कविता यथार्थ की चित्रकर्त्री न होकर स्थूलगत सूक्ष्म की भावक है अत उसके उपयोग के सम्बन्ध मे बहुत कुछ कहा सुना जा चुका है।

प्रस्तुत सग्रह मे किसी विशेष दृष्टिकोण से चुनाव न करके मैंने उन्ही रचनाओ में से कुछ रख दी है जो मुझे अच्छी लगी। मेरे दृष्टिकोण से उनका सामञ्जस्य हो सकेगा या नही इस सम्बन्ध मे मेरा कुछ कहना आवश्यक नही।

भौतिकता के कठोर धरातल पर, तर्क से निष्करुण और हिंसा से जर्जरित जीवन मे व्यक्त युग को देखकर स्वय कभी कभी मेरा व्यथित मन भी अपनी करुण भावना से पूछना चाहता है 'अश्रुमय कोमल, कहाँ तू आ गई परदेशिनी री'।

—परन्तु मेरे हृदय के कोने कोने मे सजग विश्वास जानता है कि जिस विद्युत् के भार से कठोर पृथ्वी फट जाती है उसीको बादल की सजलता अपने प्राणो का आलोक बनाये घूमती है। अग्नि को बुझाने के लिए हमे, उसके विरोधी उपादानो मे ही शक्तिशाली जल की आवश्यकता होगी, अगारो के पर्वत और लपटो के रेले की नही।

जीवन के इतिहास मे पशुता से पशुता की, कठोरता से कठोरता की और बुद्धि से बुद्धि की कभी पराजय नही हुई, इस चिर परीक्षित सिद्धान्त की जैसी नई कसौटी हम चाहते थे वैसी ही लेकर हमारा ध्वस-युग आया है। इसके ध्वसावशेष मे निर्माण का कार्य मनुष्यता, करुणा और भावनामूलक विश्वास ही से हो सकेगा यह मै नही भूलना चाहती।

प्रयाग
५-१०-४०

महादेवी

आधुनिक कवि

१

१

निशा की, धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
'बता दो मधुमदिरा का मोल',

झटक जाता था पागल वात
धूलि में तुहिन-कणों के हार,
सिखाने जीवन का सङ्गीत
तभी तुम आये थे इस पार !

बिछाती थी सपनों के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गई वह अधरों की मुस्कान
मुझे मधुमय पीडा मे बोर,

भूलती थी मैं सीखे राग
बिछलते थे कर बारम्बार,
तुम्हें तब आता था करुणेश !
उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार !

गए तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान !

नहीं अब गाया जाता देव !
थकी अँगुली, है ढीले तार,
विश्ववीणा मे अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झङ्कार !

२

रजतकरो की मृदुल तूलिका
से ले तुहिनविन्दु सुकुमार,
कलियो पर जब आँक रहा था
करुण कथा अपनी ससार,

तरल हृदय की उच्छ्वासे जब
भोले मेघ लुटा जाते,
अन्धकार दिन की चोटो पर
अञ्जन बरसाने आते!

मधु की बूँदो मे छलके जब
तारकलोको के शुचि फूल,
विधुर हृदय के मृदु कम्पन सा
सिहर उठा वह नीरव कूल;

मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से,
स्वप्नलोक के से आह्वान,
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान!

चल चितवन के दूत सुना
उनके, पल मे रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलको मे
मचा गए क्या क्या उत्पात!

जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणो के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना-
के मन प्याले पर प्याले!

पीडा का साम्राज्य बस गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार,
मिटना था निर्वाण जहाँ
नीरव रोदन था पहरेदार !

कैसे कहती हो सपना है
अलि ! उस मूक मिलन की बात ?
भरे हुए अब तक फूलो मे
मेरे आँसू उनके हास !



२

निश्वासो का नीड निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियो के बन्दनवार,

तब बुझते तारो के नीरव नयनो का यह हाहाकार,
आँसू से लिख लिख जाता है 'कितना अस्थिर है ससार'!

हँस देता जब प्रात, सुनहरे
अञ्चल मे बिखरा रोली,
लहरो की बिछलन पर जब
मचली पडती किरणे भोली,

तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घूँघट सुकुमार,
छलकी पलको से कहती है 'कितना मादक है ससार!'

देकर सौरभ दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल,
'जिसके पथ मे बिछे वही
क्यो भरता इन आँखो मे धूल'?

'अब इनमें क्या सार' मधुर जब गाती भौरो की गुञ्जार,
मर्मर का रोदन कहता है 'कितना निष्ठुर है ससार!'

स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता
जब अपने जीवन की हार,
गोधूली नभ के आँगन मे
देती अगणित दीपक बार,

हँसकर तब उस पार तिमिर का कहता बढ बढ पारावार,
'बीते युग, पर बना हुआ है अब तक मतवाला ससार!'

स्वप्नलोक के फूलो से कर
अपने जीवन का निर्माण,
'अमर हमारा राज्य' सोचते
है जब मेरे पागल प्राण,

आकर तब अज्ञात देश से जाने किसकी मृदु झङ्कार,
गा जाती है करुण स्वरो मे 'कितना पागल है ससार!'



४

रजनी ओढ़े जाती थी
झिलमिल तारो की जाली,
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियाली,

शशि को छूने मचली सी
लहरो का कर कर चुम्बन,
बेसुध तम की छाया का
तटनी करती आलिङ्गन !

अपनी जब करुण कहानी
कह जाता है मलयानिल,
आँसू से भर जाता तब—
सूखा अवनी का अञ्चल,

पल्लव के डाल हिंडोले
सौरभ सोता कलियो में,
छिप छिप किरणे आती जब
मधु से सीची गलियों में !

आँखो मे रात बिता जब
विधु ने पीला मुख फेरा,
आया फिर चित्र बनाने
प्राची मे प्रात चितेरा,

कन कन में जब छाई थी
वह नवयौवन की लाली,
मैं निर्धन तब आई ले
सपनो सैं भर कर डाली !

जिन चरणो की नखज्योती–
ने हीरकजाल, लजाये,
उन पर मैंने धुँधले से
आँसू दो चार चढ़ाये !

इन ललचाई पलको पर
पहरा जब था व्रीडा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीडा का !!

उस सोने के सपने को
देखे कितने युग बीते !
आँखो के कोष हुए है
मोती बरसा कर रीते !

अपने इस सूनेपन की
मै हूँ रानी मतवाली,
प्राणो का दीप जला कर
करती रहती दीवाली !

मेरी आहे सोती है
इन ओठो की ओटो मे,
मेरा सर्वस्व छिपा है
इन दीवानी चोटो मे !!

चिन्ता क्या है, हे निर्मम !
बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही
पीडा का राज्य अँधेरा !

५

मिल जाता काले अञ्जन मे सन्ध्या की आँखो का राग,
जब तारे फैला फैला कर सूने मे गिनता आकाश,

उसकी खोई सी चाहो मे
घुट कर मूक हुई आहो मे !

झूम झूम कर मतवाली सी पिये वेदनाओ का प्याला,
प्राणो मे रूँधी निश्वासे आती ले मेघो की माला,

उसके रह रह कर रोने में
मिल कर विद्युत् के खोने मे !

धीरे से सूने आँगन मे फैला जब जाती हैं रातें,
भर भर के ठढी साँसो मे मोती से आँसू की पाँते;

उनकी सिहराई कम्पन मे
किरणो के प्यासे चुम्बन मे !

जाने किस बीते जीवन का सदेशा दे मन्द समीरण,
छू देता अपने पखो से मुर्झाये फूलो के लोचन;

उनके फीके मुस्काने में
फिर अलसाकर गिर जाने मे !

आँखो की नीरव भिक्षा में आँसू के मिटते दागो में,
ओठो की हँसती पीडा मे आहो के बिखरे त्यागो में,

कन कन में बिखरा है निर्मम !
मेरे मानस का सूनापन !

६

मैं अनन्त पथ मे लिखती जो
सस्मित सपनो की बाते,
उनको कभी न धो पायेगी
अपने आँसू से राते!

उड उड कर जो धूलि करेगी
मेघो का नभ मे अभिषेक,
अमिट रहेगी उसके अन्चल—
मे मेरी पीडा की रेख!

तारो में प्रतिबिम्बित हो
मुस्कायेगी अनन्त आँखे,
होकर सीमाहीन शून्य में
मँडरायेगी अभिलाषे!

वीणा होगी मूक बजाने—
वाला होगा अन्तर्धान,
विस्मृति के चरणो पर आकर
लोटेगे सौ सौ निर्वाण!

जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल!

७

छाया की आँखमिचौनी
मेघो का मतवालापन,
रजनी के श्याम कपोलो
पर ढरकीले श्रम के कन,

फूलो की मीठी चितवन
नभ की ये दीपावलियाँ,
पीले मुख पर सन्ध्या के
वे किरणों की फुलझड़ियाँ!

विधु की चाँदी की थाली
मादक मकरन्द भरी सी,
जिसमे उजियारी राते
लुटती घुलती मिसरी सी,

भिक्षुक से फिर जाओगे
जब लेकर यह अपना धन,
करुणामय तब समझोगे
इन प्राणो का मँहगापन!

क्यो आज दिये देते हो
अपना मरकत सिहासन ?
यह है मेरे मरु मानस
का चमकीला सिकताकन!

आलोक यहाँ लुटता है
बुझ जाते हैं तारागण,
अविराम जला करता है
पर मेरा दीपक सा मन!

जिसकी विशाल छाया मे
जग बालक सा सोता है,
मेरी आँखो मे वह दुख
आँसू बन कर खोता है।

जग हँस कर कह देता है
मेरी आँखे है निर्धन,
इनके बरसाये मोती
क्या वह अब तक पाया गिन?

मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को व्रीडा,
उसके प्राणो से पूछो
वे पाल सकेगे पीडा?

उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन?
उनमे अनन्त करुणा है
इसमे असीम सूनापन।



८

घोर तम छाया चारो ओर
घटाये घिर आईं घन घोर,
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिले जाते है पर्वतमूल,
गरजता सागर बारम्बार,
कौन पहुँचा देगा उस पार?

तरङ्गे उठी पर्वताकार
भयङ्कर करती हाहाकार,
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
तरी का करते हैं उपहास,
हाथ से गई छूट पतवार,
कौन पहुँचा देगा उस पार?

ग्रास करने नौका, स्वच्छन्द
घूमते फिरते जलचरवृन्द;
देखकर काला सिन्धु अनन्त
हो गया हा साहस का अन्त!
तरङ्गे हैं उत्ताल अपार,
कौन पहुँचा देगा उस पार?

बुझ गया वह नक्षत्र-प्रकाश
चमकती जिसमे मेरी आश,
रैन बोली सज कृष्ण दुकूल
विसर्जन करो मनोरथ-फूल;
न लाये कोई कर्णाधार,
कौन पहुँचा देगा उस पार?

सुना था मैंने इसके पार
बसा है सोने का ससार,
जहाँ के हँसते विहग ललाम
मृत्यु-छाया का सुन कर नाम!
धरा का है अनन्त शृगार,
कौन पहुँचा देगा उस पार?
जहाँ के निर्झर नीरव गान
सुना करते अमरत्व प्रदान,
सुनाता नभ अनन्त झङ्कार
बजा देता उर के सब तार,
भरा जिसमे असीम सा प्यार,
कौन पहुँचा देगा उस पार?
पुष्प में है अनन्त मुस्कान
त्याग का है मारुत मे गान,
सभी मे है स्वर्गीय विकास
वही कोमल कमनीय प्रकाश,
दूर कितना है वह ससार!
कौन पहुँचा देगा उस पार?
सुनाई किसने पल मे आन
कान मे मधुमय मोहक तान?
'तरी को ले जाओ मँझधार
डूब कर हो जाओगे पार,
विसर्जन ही है कर्णाधार,
वही पहुँचा देगा उस पार!'

९

थकी पलके सपनो पर डाल
व्यथा मे सोता हो आकाश,
छलकता जाता हो चुपचाप
बादलो के उर से अवसाद,

वेदना की वीणा पर देव
शून्य गाता हो नीरव राग,
मिलाकर निश्वासो के तार
गूँथती हो जब तारे रात,

उन्ही तारक फूलो मे देव
गूँथना मेरे पागल प्राण—
हठीले मेरे छोटे प्राण!

किसी जीवन की मीठी याद
लुटाता हो मतवाला प्रात,
कली अलसाई आँखे खोल
सुनाती हो सपने की बात,

खोजते हो खोया उन्माद
मन्द मलयानिल के उच्छ्वास,
माँगती हो आँसू के विन्दु
मूक फूलो की सोती प्यास,

पिला देना धीरे से देव
उसे मेरे आँसू सुकुमार—
सजीले से आँसू के हार!

मचलते उद्गारो से खेल
उलझते हो किरणो के जाल,
किसी की छूकर ठढी साँस
सिहर जाती हो लहरे बाल,

चकित सा सूने मे ससार
गिन रहा हो प्राणो के दाग,
सुनहली प्याली मे दिनमान
किसी का पीता हो अनुराग,
ढाल देना उसमे अनजान
देव मेरा चिर सचित राग—
अरे यह मेरा मादक राग!

मत्त हो स्वप्निल हाला ढाल
महानिद्रा मे पारावार,
उसी की धड़कन मे तूफान
मिलाता हो अपनी झङ्कार,

झकोरो से मोहक सदेश
कह रहा हो छाया का मौन,
सुप्त आहो का दीन विषाद
पूछता हो आता है कौन?
बहा देना आकर चुपचाप
तभी यह मेरा जीवन फूल—
सुभग मेरा मुरझाया फूल!

१०

जो मुखरित कर जाती थी
मेरा नीरव आवाहन,
मैंने दुर्बल प्राणो की
वह आज सुला दी कम्पन!
थिरकन अपनी पुतली की
भारी पलको मे बाँधी,
निस्पन्द पडी हैं आँखे
बरसानेवाली आँधी!
जिसके निष्फल जीवन ने
जल जल कर देखीं राहे,
निर्वाण हुआ है देखो
वह दीप लुटाकर चाहे!
निर्घोष घटाओ में छिप
तड़पन चपला की सोती,
झञ्झा के उन्मादो मे
घुलती जाती बेहोशी!
करुणामय को भाता है
तम के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियो!
तुम पल भर को बुझ जाना!

११

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास
देववीणा का टूटा तार,
मृत्यु का क्षणभगुर उपहार
रत्न वह प्राणो का शृङ्गार,
नई आशाओ का उपवन
मधुर वह था मेरा जीवन !

क्षीरनिधि की थी सुप्त तरङ्ग
सरलता का न्यारा निर्झर,
हमारा वह सोने का स्वप्न
प्रेम की चमकीली आकर,
शुभ्र जो था निर्मेघ गगन
सुभग मेरा सङ्गी जीवन !

अलक्षित आ किसने चुपचाप
सुना अपनी सम्मोहन तान,
दिखाकर माया का साम्राज्य
बना डाला इसको अज्ञान ?
मोह-मदिरा का आस्वादन
किया क्यो हे भोले जीवन !

तुम्हे ठुकरा जाता नैराश्य
हँसा जाती है तुमको आश,
नचाता मायावी ससार
लुभा जाता सपनो का हास,
मानते विष को सञ्जीवन
मुग्ध मेरे भूले जीवन !

न रहता भौरो का आह्वान
नही रहता फूलो का राज्य,
कोकिला होती अन्तर्धान
चला जाता प्यारा ऋतुराज,
असम्भव है चिर सम्मेलन
न भूलो क्षणभगुर जीवन!

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द,
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन?
अरे अस्थिर छोटे जीवन!

छलकती जाती है दिन रैन
लबालब तेरी प्याली मीत,
ज्योति होती जाती है क्षीण
मौन होता जाता सङ्गीत;
करो नयनो का उन्मीलन
क्षणिक हे मतवाले जीवन!

शून्य से बन जाओ गम्भीर
त्याग की हो जाओ झङ्कार,
इसी छोटे प्याले मे आज
डुबा डालो सारा ससार;
लजा जाये यह मुग्ध सुमन
बनो ऐसे छोटे जीवन!

सखे! यह है माया का देश
क्षणिक है मेरा तेरा सङ्ग,
यहाँ मिलता काँटो मे बन्धु!
सजीला सा फूलो का रङ्ग,
तुम्हें करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन!

१२

जिस दिन नीरव तारो से,
बोली किरणो की अलके,
'सो जाओ अलसाई है
सुकुमार तुम्हारी पलके।'

जब इन फूलो पर मधु की
पहली बूँदे बिखरी थी,
आँखे पङ्कज की देखी
रवि ने मनुहार भरी सी।

दीपकमय कर डाला जब
जलकर पतङ्ग ने जीवन,
सीखा बालक मेघो ने
नभ के आँगन मे रोदन,

उजियारी अवगुण्ठन मे
विधु ने रजनी को देखा,
तब से मै ढूँढ रही हूँ
उनके चरणो की रेखा!

मैं फूलो मे रोती वे
बालारुण मे मुस्काते,
मै पथ में बिछ जाती हूँ
वे सौरभ मे उड जाते।

वे कहते हैं उनको मैं
अपनी पुतली मे देखूँ,
यह कौन बता जायेगा
किसमे पुतली को देखूँ।

मेरी पलको पर रातें
बरसा कर मोती सारे,
कहती 'क्या देख रहे हैं
अविराम तुम्हारे तारे'?

तम ने इन पर अञ्जन से
बुन बुन कर चादर तानी,
इन पर प्रभात ने फेरा
आकर सोने का पानी!

इन पर सौरभ की साँसे
लुट लुट जाती दीवानी,
यह पानी मे बैठी है
बन स्वप्नलोक की रानी!

कितनी बीती पतझारे
कितने मधु के दिन आये,
मेरी मधुमय पीडा को
कोई पर ढूँढ न पाये!

झिप झिप आँखे कहती है
'यह कैसी है अनहोनी?
हम और नही खेलेगी
उनसे यह आँखमिचौनी'!

अपने जर्जर अञ्चल मे
भरकर सपनो की माया,
इन थके हुए प्राणो पर
छाई विस्मृति की छाया!

मेरे जीवन की जागृति!
देखो फिर भूल न जाना,
जो वे सपना बन आवे
तुम चिरनिद्रा बन जाना!

१२

मधुरिमा के, मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान,
आँसुओ मे सहमे अभिराम
तारको से हे मूक अजान!
सीखकर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमल प्राण?

स्निग्ध रजनी से लेकर हास
रूप से भर कर सारे अङ्ग,
नये पल्लव का घूँघट डाल
अछूता ले अपना मकरन्द,
ढूँढ पाया कैसे यह देश,
स्वर्ग के हे मोहक सन्देश?

रजत किरणो से नैन पखार
अनोखा ले सौरभ का भार,
छलकता लेकर मधु का कोष,
चले आये एकाकी पार,
कहो क्या आये हो पथ भूल,
मञ्जु छोटे मुस्काते फूल?

उषा के छू आरक्त कपोल
किलक पडता तेरा उन्माद,
देख तारो के बुझते प्राण
न जाने क्या आ जाता याद?
हेरती है सौरभ की हाट
कहो किस निर्मोही की बाट?

चाँदनी का शृङ्गार समेट
अधखुली आँखो की यह कोर,
लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर?
जानते हो यह अभिनव प्यार
किसी दिन होगा कारागार?

कौन वह है सम्मोहन राग
खीच लाया तुमको सुकुमार?
तुम्हे भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार?
हँसो पहनो काँटो के हार
मधुर भोलेपन के ससार!



१४

वे मुस्काते फूल, नही—
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारो के दीप, नही—
जिनको भाता है बुझ जाना,

वे नीलम के मेघ, नही—
जिनको है घुल जाने की चाह,
वह अनन्त ऋतुराज, नही—
जिसने देखी जाने की राह !

वे सूने से नयन, नही—
जिनमे बनते आँसू-मोती,
वह प्राणों की सेज, नही—
जिसमे बेसुध पीडा सोती,

ऐसा तेरा लोक, वेदना
नही, नही जिसमें अवसाद,
जलना जाना नही, नही—
जिसने जाना मिटने का स्वाद !

क्या अमरो का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !

१५

चुभते ही तेरा अरुण बान !
बहते कन कन से फूट फूट, मधु के निर्झर से सजल गान !

इन कनकरश्मियो मे अथाह,
लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग;
बुद्बुद् से बह चलते अपार,
उसमे विहगो के मधुर राग,

बनती प्रवाल का मृदुल कूल, जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान !

नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुञ्ज,
बन गये इन्द्रधनुषी वितान,
दे मृदु कलियो की चटक, ताल,
हिम-विन्दु नचाती तरलप्राण,

धो स्वर्णप्रात मे तिमिरगात, दुहराते अलि निशि-मूक तान !

सौरभ का फैला केश-जाल,
करती समीरपरियाँ विहार,
गीली केसर-मद झूम झूम,
पीते तितली के नव कुमार;

मर्मर का मधुसगीत छेड, देते है हिल पल्लव अजान !

फैला अपने मृदु स्वप्नपंख
उड गई नीदनिशि क्षितिज-पार,
अधखुले दृगो के कञ्जकोष—
पर छाया विस्मृति का खुमार,

रँग रहा हृदय ले अश्रु हास, यह चतुर चितेरा सुधिविहान !

शून्यता में निद्रा की बन,
उमड आते ज्यो स्वप्निल घन,
पूर्णता कलिका की सुकुमार,
छलक मधु मे होती साकार।

हुआ त्यो सूनेपन का भान,
प्रथम किसके उर मे अम्लान ?
और किस शिल्पी ने अनजान,
विश्वप्रतिमा कर दी निर्माण ?

काल-सीमा के सङ्गम पर,
मोम सी पीडा उज्ज्वल कर,
उसे पहनाई अवगुण्ठन,
हास औ' रोदन से बुन बुन।

कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात,
मिटाता रँगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?

शून्य नभ मे तम का चुम्बन,
जला देता असख्य उडुगण,
बुझा क्यो उनको जाती मूक,
भोर ही उजियाले की फूँक ?

रजतप्याले ये निद्रा ढाल,
बाँट देती जो रजनी बाल,
उसे कलियो मे आँसू घोल,
चुकाना पडता किसको मोल ?

पोछती जब हौले से वात,
इधर निशि के आँसू अवदात,
उधर क्यो हँसता दिन का बाल,
अरुणिमा से रञ्जित कर गाल ?

कली पर अलि का पहला गान,
थिरकता जब बन मृदु मुस्कान,
विफल सपनो के हार पिघल,
ढुलकते क्यो रहते प्रतिपल ?

गुलालो से रवि का पथ लीप,
जला पश्चिम मे पहला दीप,
विहँसती सन्ध्या भरी सुहाग,
दृगो से झरता स्वर्णपराग,

उसे तम की बढ एक झकोर,
उडा कर ले जाती किस ओर ?
अथक सुषमा का सृजन विनाश,
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?

किसी की व्यथासिक्त चितवन,
जगाती कण कण मे स्पन्दन,
गूँथ उनकी साँसो के गीत,
कौन रचता विराट सङ्गीत ?

प्रलय बनकर किसका अनुताप,
डुबा जाता उसको चुपचाप ?

आदि मे छिप आता अवसान,
अन्त मे बनता नव्य विधान,
सूत्र ही है क्या यह ससार,
गुँथे जिसमे सुखदुख जयहार ?

१७

रजतरश्मियो की छाया मे धूमिल घन सा वह आता,
इस निदाघ से मानस मे करुणा के स्रोत बहा जाता।

उसमे मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सबके बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठो मे करुणकाव्य वह लिख जाता।

वह उर मे आता बन पाहुन,
कहता मन से 'अब न कृपण बन'
मानस की निधियाँ लेता गिन,
दृग-द्वारो को खोल विश्वभिक्षुक पर, हँस बरसा आता।

यह जग है विस्मय से निर्मित,
मूक पथिक आते जाते नित,
नही प्राण प्राणो से परिचित,
यह उनका सकेत नही जिसके बिन विनिमय हो पाता।

मृगमरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासो के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर,
गर्वित कहता 'मैं मधु हूँ मुझसे क्या पतझर का नाता'?

दुख के पद छू बहते झर झर,
कण कण से आँसू के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस मे वह असीम जग को आमन्त्रित कर लाता।

चिर तृप्ति कामनाओ का
कर जाती निष्फल जीवन,
बुझते ही प्यास हमारी
पल मे विरक्ति जाती बन!

पूर्णता यही भरने की
ढुल, कर देना सूने घन,
सुख की चिर पूर्ति यही है
उस मधु से फिर जावे मन!

चिर ध्येय यही जलने का
ठढी विभूति बन जाना,
है पीडा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना!

मेरे छोटे जीवन मे
देना न तृप्ति का कण भर;
रहने दो प्यासी आँखे
भरती आँसू के सागर!

तुम मानस मे बस जाओ
छिप दुख की अवगुठन से,
मै तुम्हे ढूँढने के मिस
परिचित हो लूँ,कण कण से!

तुम रहो सजल आँखो की
सित असित मुकुरता बनकर,
मै सब कुछ तुमसे देखूँ
तुमको न देख पाऊँ पर!

अट्ठा

चिर मिलनविरह-पुलिनो की
सरिता हो मेरा जीवन,
प्रतिपल होता रहता हो
युग कूलो का आलिङ्गन!
इस अचल क्षितिज-रेखा से
तुम रहो निकट जीवन के,
पर तुम्हे पकड पाने के
सारे प्रयत्न हो फीके!

द्रुत पखोवाले मन को
तुम अन्तहीन नभ होना,
युग उड जावे उडते ही
परिचित हो एक न कोना!
तुम अमर प्रतीक्षा हो मै
पग विरहपथिक का धीमा,
आते जाते मिट जाऊँ
पाऊँ न पथ की सीमा!

तुम हो प्रभात की चितवन
मैं विधुर निशा बन आऊँ,
काटूँ वियोग-पल रोते
सयोग-समय छिप जाऊँ!
आवे बन मधुर मिलन-क्षण
पीडा की मधुर कसक सा,
हँस उठे विरह ओठो मे—
प्राणो मे एक पुलक सा!

पाने मे तुमको खोऊँ
खोने मे समभूँ पाना,
यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना!
गूँथे विषाद के मोती
चाँदी सी स्मित के डोरे,
हो मेरे लक्ष्य-क्षितिज की
आलोक—तिमिर दो छोरे!

१६

कुमुद-दल से वेदना के दाग को
पोछती जब आँसुओ से रश्मियाँ,
चौक उठती अनिल के निश्वास छू
तारिकाये चकित सी अनजान सी,
तब बुला जाता मुझे उस पार जो,
दूर के सगीत सा वह कौन है ?

शून्य नभ पर उमड जब दुखभार सी
नैश तम मे सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगुनुओ की पाँति भी
जब सुनहले आँसुओ के हार सी,
तब चमक जो लोचनो को मूँदता,
तडित् की मुस्कान मे वह कौन है ?

अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज से
ज्योत्स्ना के रजतपारावार मे,
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नीद के उच्छ्वास सा, वह कौन है ?

जब कपोल गुलाब पर शिशुप्रात के
सूखते नक्षत्र जल के बिन्दु से,
रश्मियो की कनक-धारा मे नहा
मुकुल हँसते मोतियों का अर्घ्य दे,
स्वप्न-शाला मे यवनिका डाल जो
तब दृगो को खोलता वह कौन है ?

किसी नक्षत्र-लोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात,
ढुलक जो पडी ओस की बूँद
तरल मोती सा ले मृदु गात,
नाम से जीवन से अनजान,
कहो क्या परिचय दे नादान!

किसी निर्मम कर का आघात
छेडता जब वीणा के तार,
अनिल के चल पखो के साथ
दूर जो उड जाती झङ्कार,
जन्म ही उसे विरह की रात,
सुनावे क्या वह मिलन-प्रभात!

चाह शैशव सा परिचयहीन
पलक-दोलो मे पल भर झूल,
कपोलो पर जो ढुल चुपचाप
गया कुम्हला आँखो का फूल,
एक ही आदि अन्त की साँस—
कहे वह क्या पिछला इतिहास!

मूक हो जाता वारिद-घोष
जगा कर जब सारा ससार,
गूँजती, टकराती असहाय
धरा से जो प्रतिध्वनि सुकुमार,
देश का जिसे न निज का भान,
बतावे क्या अपनी पहिचान!

सिन्धु को क्या परिचय दे देव !
बिगडते बनते वीचि-विलास ?
क्षुद्र है मेरे बुद्‌बुद्‌ प्राण
तुम्ही मे सृष्टि तुम्ही मे नाश !
मुझे क्यो देते हो अभिराम !
थाह पाने का दुस्तर काम ?

जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्‌वास,
चुरा लाया जो विश्व-समीर
वही पीडा की पहली साँस !
छोड क्यो देते बारम्बार,
मुझे तम से करने अभिसार ?

छिपा है जननी का अस्तित्व
रुदन मे शिशु के अर्थविहीन,
मिलेगा चित्रकार का ज्ञान
चित्र की ही जडता मे लीन,
दृगो मे छिपा अश्रु का हार,
सुभग है तेरा ही उपहार !



२१

तुहिन के पुलिनो पर छविमान,
किसी मधुदिन की लहर समान,
स्वप्न की प्रतिमा पर अनजान,
वेदना का ज्यो छाया-दान,
विश्व मे यह भोला जीवन—
स्वप्न जागृति का मूक मिलन,
बॉध अञ्चल मे विस्मृति धन,
कर रहा किसका अन्वेषण ?

धूलि के कण मे नभ सी चाह,
विन्दु मे दुख का जलधि अथाह,
एक स्पन्दन मे स्वप्न अपार,
एक पल असफलता का भार,
सॉस मे अनुतापो का दाह,
कल्पना का अविराम प्रवाह,
वही तो है इसके लघु प्राण,
शाप वरदानो के सन्धान !

भरे उर मे छवि का मधुमास,
दृगो में अश्रु अधर मे हास,
ले रहा किसका पावस प्यार,
विपुल लघु प्राणो मे अवतार ?
नील नभ का असीम विस्तार,
अनल के धूमिल कण दो चार,
सलिल से निर्भर वीचि-विलास,
मन्द मलयानिल से उच्छ्वास,

धरा से ले परमाणु उधार,
किया किसने मानव साकार ?

दृगो मे सोते है अज्ञात,
निदाघो के दिन पावस-रात,
सुधा का मधु हाला का राग,
व्यथा के घन अतृप्ति की आग !

छिपे मानस मे पवि नवनीत,
निमिष की गति निर्भर के गीत,
अश्रु की उर्म्मि हास का वात,
कुहू का तम माधव का प्रात !

हो गये क्या उर मे वपुमान,
क्षुद्रता रज की नभ का मान,
स्वर्ग की छवि रौरव की छाँह,
शीत हिम की बाडव का दाह,

और—यह विस्मय का ससार,
अखिल वैभव का राजकुमार,
धूलि मे क्यो खिलकर नादान,
उसी में होता अन्तर्धान ?

काल के प्याले में अभिनव,
ढाल जीवन का मधुआसव,
नाश के हिमअधरो से मौन,
लगा देता है आकर कौन ?

बिखर कर कन कन के लघुप्राण,
गुनगुनाते रहते यह तान,
"अमरता है जीवन का ह्रास,
मृत्यु जीवन का चरम विकास"

दूर है अपना लक्ष्य महान,
एक जीवन 'पग' एक समान,
अलक्षित परिवर्तन की डोर,
खीचती हमे इष्ट की ओर !

छिपा कर उर मे निकट प्रभात,
गहनतम होती पिछली रात,
सघन वारिद अम्बर से छूट,
सफल होते जल-कण मे फूट !

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार,
दीप करता आलोक-प्रसार,
गला कर मृत्पिण्डो मे प्राण,
बीज करता असख्य निर्माण !

सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने मे सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास,
विफलता मे है पूर्ति-विकास !



२२

कह दे माँ क्या अब देखूँ !

देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरो को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ !

देखूँ हिमहीरक हँसते
हिलते नीले कमलो पर,
या मुरझाई पलको से
झरते आँसू-कण देखूँ !

सौरभ पी पी कर बहता
देखूँ यह मन्द समीरण,
दुख की घूँटे पीती या
ठढी साँसो को देखूँ !

खेलूँ परागमय मधुमय
तेरी वसन्त-छाया में,
या झुलसे सतापो से
प्राणो का पतझर देखूँ !

मकरन्द-पगी केसर पर
जीती मधुपरियाँ ढूँढूँ,
या उरपञ्जर मे कण को
तरसे जीवनशुक देखूँ !

कलियो की घनजाली में
छिपती देखूँ लतिकाये,
या दुर्दिन के हाथो मे
लज्जा की करुणा देखूँ!

बहलाऊँ नव किसलय के—
झूले मे अलिशिशु तेरे,
पाषाणो मे मसले या
फूलो से शैशव देखूँ!

तेरे असीम आँगन की
देखूँ जगमग दीवाली,
या इस निर्जन कोने के
बुझते दीपक को देखूँ!

देखूँ विहगो का कलरव
घुलता जल की कलकल मे,
निस्पन्द पडी वीणा से
या बिखरे मानस देखूँ!

मृदु रजतरश्मियाँ देखूँ
उलझी निद्रा-पखो मे,
या निर्निमेष पलको मे
चिन्ता का अभिनय देखूँ!

तुझमे अम्लान हँसी है
इसमे अजस्र आँसू-जल,
तेरा वैभव देखूँ या
जीवन का क्रन्दन देखूँ!

२३

दिया क्यों जीवन का वरदान ?
इसमें है स्मृतियों की कम्पन,
सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन,
स्वप्नलोक की परियाँ इसमें
भूल गईं मुस्कान !

इसमें है झञ्झा का शैशव,
अनुरञ्जित कलियों का वैभव,
मलयपवन इसमें भर जाता
मृदु लहरों के गान !

इन्द्रधनुष सा घन-अञ्चल में,
तुहिनबिन्दु सा किसलय दल में,
करता है पल पल में देखो
मिटने का अभिमान !

सिकता में अङ्कित रेखा सा,
वात-विकम्पित दीपशिखा सा,
काल-कपोलों पर आँसू सा
ढुल जाता हो म्लान !

२४

नवमेघो को रोता था
जब चातक का बालक मन,
इन आँखो मे करुणा के
घिर घिर आते थे सावन!
किरणो को देख चुराते
चित्रित पखो की माया,
पलके आकुल होती थी
तितली पर करने छाया!

जब अपनी निश्वासो से
तारे पिघलाती राते,
गिन गिन धरता था यह मन
उनके आँसू की पाँतें!
जो नव लज्जा जाती भर
नभ मे कलियो मे लाली,
वह मृदु पुलको से मेरी
छलकाती जीवन-प्याली!

घिर कर अविरल मेघो से
जब नभमण्डल झुक जाता,
अज्ञात वेदनाओ से
मेरा मानस भर आता!
गर्जन के द्रुत तालो पर
चपला का बेसुध नर्तन,
मेरे मन-बालशिखी मे
सङ्गीत मधुर जाता बन!

किस भाँति कहूँ कैसे थे
वे जग से परिचय के दिन?
मिश्री सा घुल जाता था
मन छूते ही आँसू-कन!

अपनेपन की छाया तब
देखी न मुकुरमानस ने,
उसमे प्रतिबिम्बित सबके
सुख दुख लगते थे अपने !

तब सीमाहीनो से था
मेरी लघुता का परिचय,
होता रहता था प्रतिपल
स्मित का आँसू का विनिमय !

परिवर्तन-पथ मे दोनो
शिशु से करते थे क्रीडा,
मन माँग रहा था विस्मय
जग माँग रहा था पीडा !

यह दोनो दो ओरे थी
ससृति की चित्रपटी की,
उस बिन मेरा दुख सूना
मुझ बिन वह सुषमा फीकी !

किसने अनजाने आकर
वह लिया चुरा भोलापन ?
उस विस्मृति के सपने से
चौकाया छूकर जीवन !

जाती नवजीवन बरसा
जो करुण घटा कण कण मे,
निस्पन्द पडी सोती वह
अब मन के लघु बन्धन मे !

स्मित बनकर नाच रहा है
अपना लघु सुख अधरो पर,
अभिनय करता पलको मे
अपना दुख आँसू बनकर !

अपनी लघु निश्वासो में
अपनी साधो की कम्पन,
अपने सीमित मानस मे
अपने सपनो का स्पन्दन !

मेरा अपार वैभव ही
मुझसे है आज अपरिचित,
हो गया उदधि जीवन का
सिकता-कण में निर्वासित।

स्मित ले प्रभात आता नित
दीपक दे सन्ध्या जाती,
दिन ढलता सोना बरसा
निशि मोती दे मुस्काती।

अस्फुट मर्मर मे अपनी
गति की कलकल उलझाकर,
मेरे अनन्तपथ मे नित
सगीत बिछाते निर्झर।

यह साँसे गिनते गिनते
नभ की पलके झप जाती,
मेरे विरक्ति-अञ्चल मे
सौरभ समीर भर जाती।

मुख जोह रहे है मेरा
पथ मे कब से चिर सहचर,
मन रोया ही करता क्यो
अपने एकाकीपन पर?

अपनी कण कण मे बिखरी
निधियाँ न कभी पहचानी,
मेरा लघु अपनापन है
लघुता की अकथ कहानी।

मै दिन को ढूँढ रही हूँ
जुगनू की उजियाली मे,
मन माँग रहा है मेरा
सिकता हीरक-प्याली मे।

२५

प्राणो के अन्तिम पाहुन !

चाँदनी-धुला, अञ्जन सा, विद्युत्-मुस्कान बिछाता,
सुरभित समीरपखो से उड जो नभ मे घिर आता,
वह वारिद तुम आना बन !

ज्यो श्रान्त पथिक पर रजनी छाया सी आ मुस्काती,
भारी पलको मे धीरे निद्रा का मधु ढुलकाती,
त्यो करना बेसुध जीवन !

अज्ञातलोक से छिप छिप ज्यो उतर रश्मियाँ आती,
मधु पीकर प्यास बुझाने फूलो के उर खुलवाती,
छिप आना तुम छायातन !

कितनी करुणाओ का मधु कितनी सुषमा की लाली,
पुतली मे छान भरी है मैंने जीवन की प्याली,
पी कर लेना शीतल मन !

हिम से जड नीला अपना निस्पन्द हृदय ले आना,
मेरा जीवनदीपक धर उसको सस्पन्द बनाना,
हिम होने देना यह तन !

कितने युग बीत गये इन निधियो का करते सचय,
तुम थोडे से आँसू दे इन सबको कर लेना क्रय,
अब हो व्यापार-विसर्जन !

है अन्तहीन लय यह जग पल पल है मधुमय कम्पन,
तुम इसकी स्वरलहरी मे धोना अपने श्रम के कण,
मधु से भरना सूनापन !

पाहुन से आते जाते कितने सुख के दुख के दल,
वे जीवन के क्षण क्षण मे भरते असीम कोलाहल,
तुम बन आना नीरव क्षण !

तेरी छाया मे दिव को हँसता है गर्वीला जग,
तू एक अतिथि जिसका पथ है देख रहे अगणित दृग,
साँसो मे घडियाँ गिन गिन !



२६

अलि कैसे उनको पाऊँ !

वे आँसू बनकर मेरे, इस कारण ढुल ढुल जाते,
इन पलको के बन्धन मे, मै बाँध बाँध पछताऊँ !

मेघो मे विद्युत् सी छवि, उनकी बन कर मिट जाती,
आँखो की चित्रपटी मे, जिसमे मै आँक न पाऊँ !

वे आभा बन खो जाते, शशिकिरणो की उलझन मे,
जिसमे उनको कण कण मे, ढूँढूँ पहचान न पाऊँ !

सोते सागर की धडकन, बन लहरो की थपकी से,
अपनी यह करुण कहानी, जिसमे उनको न सुनाऊँ !

वे तारकबालाओ की, अपलक चितवन बन आते,
जिसमें उनकी छाया भी, मै छू न सकूँ अकुलाऊँ !

वे चुपके से मानस मे, आ छिपते उच्छ्वासे बन,
जिसमे उनको साँसो मे, देखूँ पर रोक न पाऊँ !

वे स्मृति बन कर मानस मे, खटका करते हैं निशिदिन,
उनकी इस निष्ठुरता को, जिसमे मैं भूल न जाऊँ !

२७

प्रिय इन नयनो का अश्रु-नीर !

दुख से आविल सुख से पकिल,
बुद्‌बुद्‌ से स्वप्नो से फेनिल,
बहता है युग युग से अधीर !

जीवनपथ का दुर्गमतम तल,
अपनी गति से कर सजल सरल,
शीतल करता युग तृषित तीर !

इसमे उपजा यह नीरज सित,
कोमल कोमल लज्जित मीलित,
सौरभ सी लेकर मधुर पीर !

इसमे न पङ्क का चिह्न शेष,
इसमे न ठहरता सलिल-लेश,
इसको न जगाती मधुप-भीर !

तेरे करुणा-कण से विलसित,
हो तेरी चितवन से विकसित,
छू तेरी श्वासो का समीर !

२८

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त-रजनी!
तारकमय नव वेणीबन्धन,
शीशफूल कर शशि का नूतन,
रश्मिवलय सित घन-अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी!
पुलकती आ वसन्त-रजनी!
मर्मर की सुमधुर नूपुरध्वनि,
अलि-गुञ्जित पद्मो की किंकिणि,
भर पदगति मे अलस तरगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी!
विहँसती आ वसन्त-रजनी!
पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर मे हो स्मृतियो की अञ्जलि,
मलयानिल का चल दुकूल अलि!
घिर छाया सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी!
सकुचती आ वसन्त-रजनी!
सिहर सिहर उठता सरिता-उर,
खुल खुल पडते सुमन सुधा-भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर,
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनी!
सिहरती आ वसन्त-रजनी!

२९

पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यो भर भर ?
सकुच सलज खिलती शेफाली,
अलस मौलश्री डाली डाली,
बुनते नव प्रवाल कुञ्जो मे,
रजत श्याम तारो से जाली,
शिथिल मधु-पवन, गिन-गिन मधुकण,
हरसिगार झरते है झर झर !
पिक की मधुमय वशी बोली,
नाच उठी सुन अलिनी भोली,
अरुण सजल पाटल बरसाता,
तम पर मृदु पराग की रोली,
मृदुल अक धर, दर्पण सा सर,
आँज रही निशि दृगइन्दीवर !
आँसू बन बन तारक आते,
सुमन हृदय मे सेज बिछाते,
कम्पित वानीरो के वन भी
रह रह करुण विहाग सुनाते,
निद्रा उन्मन, कर कर विचरण,
लौट रही सपने सचित कर !
जीवन जल-कण से निर्मित सा,
चाह इन्द्रधनु से चित्रित सा,
सजल मेघ सा धूमिल है जग,
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा,
तुम विद्युत् बन, आओ पाहुन !
मेरी पलको मे पग धर धर !

तुम्हे बाँध पाती सपने मे !

तो चिरजीवन-प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने मे !

पावस-घन सी उमड बिखरती,
शरद निशा सी नीरव घिरती,
धो लेती जग का विषाद
ढुलते लघु आँसू-कण अपने मे !

मधुर राग बन विश्व सुलाती,
सौरभ बन कण कण बस जाती,
भरती मै ससृति का क्रन्दन
हँस जर्जर जीवन अपने मे !

सबकी सीमा बन सागर सी,
हो असीम आलोक-लहर सी,
तारोमय आकाश छिपा
रखती चचल तारक अपने मे !

शाप मुझे बन जाता वर सा,
पतझर मधु का मास अजर सा,
रचती कितने स्वर्ग एक
लघु प्राणो के स्पन्दन अपने मे !

साँसे कहती अमर कहानी,
पल पल बनता अमिट निशानी,
प्रिय ! मैं लेती बाँध मुक्ति
सौ सौ लघुतम बन्धन अपने मे !

३१

कौन तुम मेरे हृदय मे?

कौन मेरी कसक मे नित
मधुरता भरता अलक्षित?
कौन प्यासे लोचनो मे
घुमड घिर झरता अपरिचित?

स्वर्णस्वप्नो का चितेरा
नीद के सूने निलय मे!
कौन तुम मेरे हृदय मे?

अनुसरण निश्वास मेरे
कर रहे किसका निरन्तर?
चूमने पदचिह्न किसके
लौटते यह श्वास फिर फिर?

कौन बन्दी कर मुझे अब
बँध गया अपनी विजय मे?
कौन तुम मेरे हृदय मे?

एक करुण अभाव मे चिर—
तृप्ति का ससार सचित,
एक लघु क्षण दे रहा
निर्वाण के वरदान शत शत,

पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में?
कौन तुम मेरे हृदय मे?

गूँजता उर मे न जाने
दूर के सगीत सा क्या!
आज खो निज को मुझे
खोया मिला, विपरीत सा क्या!

क्या नहा आई विरह-निशि
मिलन-मधुदिन के उदय मे?
कौन तुम मेरे हृदय मे?

तिमिरपारावार मे
आलोकप्रतिमा है अकम्पित,
आज ज्वाला से बरसता
क्यो मधुर घनसार सुरभित?

सुन रही हूँ एक ही
झङ्कार जीवन मे प्रलय मे?
कौन तुम मेरे हृदय मे?

मूक सुख दुख कर रहे
मेरा नया शृगार सा क्या?
झूम गर्वित स्वर्ग देता—
नत धरा को प्यार सा क्या?

आज पुलकित सृष्टि क्या
करने चली अभिसार लय में?
कौन तुम मेरे हृदय मे?



३२

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात!

वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात!
जीवन विरह का जलजात!

आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल,
तरल जल-कण से बने घन सा क्षणिक मृदु गात!
जीवन विरह का जलजात!

अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास,
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात!
जीवन विरह का जलजात!

काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार,
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में वात!
जीवन विरह का जलजात!

जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज,
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात!
जीवन विरह का जलजात!

३२

बीन भी हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ !

नीद थी मेरी अचल निस्पन्द कण कण मे,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन मे,
प्रलय मे मेरा पता पदचिह्न जीवन मे,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन मे,

कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ !

नयन मे जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण मे वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर मे छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,

दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ !

आग हूँ जिससे ढुलकते विन्दु हिमजल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे है पाँवडे पल के,
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर मे,
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में,

नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ !

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी आघात भी झङ्कार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी;

अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ !

३४

रूपसि तेरा घन-केश-पाश!
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश!
नभगङ्गा की रजतधार मे
धो आई क्या इन्हे रात?
कम्पित हैं तेरे सजल अग,
सिहरा सा तन है सद्यस्नात!
भीगी अलको के छोरो से
चूती बूँदे कर विविध लास!
सौरभभीना झीना गीला
लिपटा मृदु अञ्जन सा दुकूल,
चल अञ्चल से झर झर झरते
पथ मे जुगनू के स्वर्ण-फूल,
दीपक से देता बार बार
तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास!
उच्छ्वसित वक्ष पर चचल है
वक-पाँतो का अरविन्द-हार,
तेरी निश्वासे छू भू को
बन बन जाती मलयज बयार,
केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास!
इन स्निग्ध लटो से छा दे तन
पुलकित अङ्को मे भर विशाल,
झुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अकित कर इसका मृदुल भाल,
दुलरा दे ना बहला दे ना
यह तेरा शिशु जग है उदास!

३५

तुम मुझ मे प्रिय फिर परिचय क्या !

तारक मे छवि प्राणो मे स्मृति,
पलको मे नीरव पद की गति,
लघु उर मे पुलको की ससृति,

भर लाई हूँ तेरी चचल
और करूँ जग मे सचय क्या !

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाई रजनी विषादमय,
यह जागृति वह नीद स्वप्नमय,

खेल खेल थक थक सोने दो
मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या !

तेरा अधर विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मितमिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधुशाला,

फिर पूछूँ क्यो मेरे साकी !
देते हो मधुमय विषमय क्या ?

रोम रोम मे नन्दन पुलकित,
साँस साँस मे जीवन शत शत,
स्वप्न स्वप्न मे विश्व अपरिचित,

मुझमे नित बनते मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?

हारूँ तो खोऊँ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम मे निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन,

भर लाऊँ सीपी मे सागर
प्रिय ! मेरी अब हार विजय क्या ?

चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग तू मै स्वरसगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,

काया छाया मे रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या !



मधुर मधुर मेरे दीपक जल !

युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदुतन !
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल !
पुलक पुलक मेरे दीपक जल !

सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझसे ज्वाला-कण,
विश्वशलभ सिर धुन कहता 'मै
हाय न जल पाया तुझमे मिल' !
सिहर सिहर मेरे दीपक जल !

जलते नभ मे देख असख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक;
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत् ले घिरता है बादल !
विहँस विहँस मेरे दीपक जल !

द्रुम के अङ्ग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयङ्गम,
वसुधा के जड अन्तर मे भी,
बन्दी है तापो की हलचल !
बिखर बिखर मेरे दीपक जल !

मेरी निश्वासो से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर,
मैं अञ्चल की ओट किये हूँ,
अपनी मृदु पलको से चञ्चल !
सहज सहज मेरे दीपक जल !

सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घडियाँ गिन,
मैं दृग के अक्षय कोषो से—
तुझमे भरती हूँ आँसू-जल !
सजल सजल मेरे दीपक जल !

तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेगे नव खेल निरन्तर,
तम के अणु अणु मे विद्युत् सा—
अमिट चित्र अङ्कित करता चल !
सरल सरल मेरे दीपक जल !

तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय,
मधुर मिलन मे मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित मे घुल खिल !

मदिर मदिर मेरे दीपक जल !
प्रियतम का पथ आलोकित कर !



३७

मेरे हँसते अधर नही जग—
की आँसू-लडियाँ देखो!
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाई कलियाँ देखो!

हँस देता नव इन्द्रधनुष की स्मित में घन मिटता मिटता;
रँग जाता है विश्व राग से निष्फल दिन ढलता ढलता,
कर जाता ससार सुरभिमय एक सुमन झरता झरता,
भर जाता आलोक तिमिर मे लघु दीपक बझता बुझता;

मिटने वालो की हे निष्ठुर!
बेसुध रँगरलियाँ देखो!

गल जाता लघु बीज असख्यक नश्वर बीज बनाने को,
तजता पल्लव वृन्त पतन के हेतु नये विकसाने को,
मिटता लघु पल प्रिय देखो कितने युग कल्प मिटाने को;
भूल गया जग भूल, विपुल भूलोमय सृष्टि रचाने को;

मेरे बन्धन आज नही प्रिय,
ससृति की कडियाँ देखो!

श्वासें कहती 'आता प्रिय' निश्वास बताते वह जाता,
आँखो ने समझा अनजाना उर कहता चिर यह नाता,
सुधि से सुन 'वह स्वप्न सजीला क्षण क्षण नूतन बन आता',
दुख उलझन मे राह न पाता सुख दृगजल में बह जाता;

मुझमे हो तो आज तुम्ही 'मैं'
बन दुख की घडियाँ देखो!

कैसे सँदेश प्रिय पहुँचाती !

दृगजल की सित मसि है अक्षय,
मसि-प्याली झरते तारक द्वय,
पल पल के उड़ते पृष्ठो पर,
सुधि से लिख श्वासो के अक्षर—

मै अपने ही बेसुधपन मे
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती !

छायापथ मे छाया से चल,
कितने आते जाते प्रतिपल,
लगते उनके विभ्रम इगित,
क्षण मे रहस्य क्षण मे परिचित,

मिलता न दूत वह चिर परिचित
जिसको उर का धन दे आती !

अज्ञातपुलिन से, उज्ज्वलतर,
किरणे प्रवाल तरणी मे भर,
तम के नीलम-कूलो पर नित,
जो ले आती ऊषा सस्मित—

वह मेरी करुण कहानी मे
मुसकाने अङ्कित कर जाती !

सज केशरपट तारक बेदी,
दृग-अञ्जन मृदु पद मे मेहदी;
आती भर मदिरा से गगरी,
सन्ध्या अनुराग सुहाग भरी,

मेरे विषाद मे वह अपने
मधुरस की बूँदे छलकाती!

डाले नव घन का अवगुण्ठन,
दृग-तारक मे सकरुण चितवन,
पदध्वनि से सपने जाग्रत कर,
श्वासो से फैला मूक तिमिर,

निशि अभिसारो मे आँसू से
मेरी मनुहारे धो जाती!



२६

टूट गया वह दर्पण निर्मम !
उसमे हँस दी मेरी छाया,
मुझमे रो दी ममता माया,
अश्रुहास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आँखमिचौनी
प्रिय ! जिसके परदे मे 'मै' 'तुम' !
अपने दो आकार बनाने,
दोनो का अभिसार दिखाने,
भूलो का ससार बसाने,
जो झिलमिल झिलमिल सा तुमने
हँस हँस दे डाला था निरुपम !
कैसा पतझर कैसा सावन,
कैसी मिलन विरह की उलझन,
कैसा पल घडियोमय जीवन,
कैसे निशिदिन कैसे सुखदुख
आज विश्व मे तुम हो या तम !
किसमें देख सँवारूँ कुन्तल,
अङ्गराग पुलको का मल मल,
स्वप्नो से आँजूँ पलके चल,
किस पर रीझूँ किससे रूठूँ
भर लूँ किस छबि से अन्तरतम ?
आज कहाँ मेरा अपनापन,
तेरे छिपने का अवगुण्ठन,
मेरा बन्धन तेरा साधन,
तुम मुझमे अपना सुख देखो
मै तुममे अपना दुख प्रियतम !

कमलदल पर किरण अकित
चित्र हूँ मैं क्या चितेरे?

बादलो की प्यालियाँ भर चाँदनी के सार से,
तूलिका कर इन्द्रधनु तुमने रँगा उर प्यार से,
काल के लघु अश्रु से
धुल जायँगे क्या रग मेरे?

तडित् सुधि मे, वेदना मे करुण पावस-रात भी,
आँक स्वप्नो मे दिया तुमने वसन्त-प्रभात भी,
क्या शिरीष-प्रसून से
कुम्हलायँगे यह साज मेरे?

है युगो का मूक परिचय देश से इस राह से,
हो गई सुरभित यहाँ की रेणु मेरी चाह से,
नाश के निश्वास से
मिट पायेंगे क्या चिह्न मेरे?

नाच उठते निमिष पल मेरे चरण की चाप से,
नाप ली निःसीमता मैंने दृगो के माप से;
मृत्यु के उर मे समा क्या
पायँगे अब प्राण मेरे?

आँक दी जग के हृदय मे अमिट मेरी प्यास क्यो?
अश्रुमय अवसाद क्यो यह पुलक-कम्पन-लास क्यो?
मै मिटूँगी क्या अमर
हो जायँगे उपहार मेरे?

४१

मुस्काता सकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ?

विद्युत् के चल स्वर्णपाश मे बँध हँस देता रोता जलधर,
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतो से नहलाता सागर,
दिन निशि को, देती निशि दिन को
कनक-रजत के मधु-प्याले है !

मोती बिखराती नूपुर के छिप तारक-परियाँ नर्तन कर,
हिमकण पर आता जाता मलयानिल परिमल से अञ्जलि भर,
भ्रान्त पथिक से फिर फिर आते
विस्मित पल क्षण मतवाले है !

सघन वेदना के तम मे सुधि जाती सुख सोने के कण भर,
सुरधनु नव रचती निश्वासे स्मित का इन भीगे अधरो पर,
आज आँसुओ के कोषो पर
स्वप्न बने पहरेवाले हैं !

नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रहे कैसी उलझन !
रोम रोम मे होता री सखि एक नया उर का सा स्पन्दन !
पुलको से भर फूल बन गये
जितने प्राणो के छाले हैं !

४२

झरते नित लोचन मेरे हो!

जलती जो युग युग से उज्ज्वल,
आभा से रच रच मुक्ताहल,
वह तारक-माला उनकी,
चल विद्युत् के कङ्कण मेरे हो!

ले ले तरल रजत औ' कञ्चन,
निशिदिन ने लीपा जो आँगन,
वह सुषमामय नभ उनका,
पल पल मिटते नव घन मेरे हो!

पद्मराग-कलियो से विकसित,
नीलम के अलियों से मुखरित,
चिर सुरभित नन्दन उनका,
यह अश्रु-भार-नत तृण मेरे हो!

तम सा नीरव नभ सा विस्तृत,
हास रुदन से दूर अपरिचित,
वह सूनापन हो उनका,
यह सुखदुखमय स्पन्दन मेरे हो!

जिसमे कसक न सुधि का दशन,
प्रिय में मिट जाने के साधन,
वे निर्वाण—मुक्ति उनके,
जीवन के शत बन्धन मेरे हो!

बुद्बुद् मे आवर्त्त अपरिमित,
कण मे शत जीवन परिवर्तित,
हो चिर सृष्टि प्रलय उनके,
बनने मिटने के क्षण मेरे हो !

सस्मित पुलकित नित परिमलमय,
इन्द्रधनुष सा नवरङ्गोमय,
अग जग उनका कण कण उनका,
पलभर वे निर्मम मेरे हो !



४३

प्राणपिक प्रिय-नाम रे कह!
मै मिटी निस्सीम प्रिय मे,
वह गया बँध लघु हृदय मे;
अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात रे कह!
दुखअतिथि का धो चरणतल,
विश्व रसमय कर रहा जल,
यह नही क्रन्दन हठीले!
सजल पावस मास रे कह!
ले गया जिसको लुभा दिन,
लौटती वह स्वप्न बन बन;
है न मेरी नीद जागृति
का इसे उत्पात रे कह!
एक प्रिय-दृग-श्यामता सा,
दूसरा स्मित की विभा सा,
यह नही निशिदिन इन्हें
प्रिय का मधुर उपहार रे कह!
श्वास से स्पन्दन रहे झर,
लोचनो से रिस रहा उर;
दान क्या प्रिय ने दिया
निर्वाण का वरदान रे कह!
चल क्षणो का क्षणिक सञ्चय,
बालुका से विन्दु-परिचय,
कह न जीवन तू इसे
प्रिय का निठुर उपहास रे कह!

४४

लाये कौन सँदेश नये घन !

अम्बर गर्वित,
हो आया नत,
चिर निस्पन्द हृदय मे उसके उमडे री पुलको के सावन !

चौकी निद्रित,
रजनी अलसित,
श्यामल पुलकित कम्पित कर मे दमक उठे विद्युत् के ककण !

दिशि का चञ्चल,
परिमल-अञ्चल,
छिन्नहार से बिखर पडे सखि ! जुगुनू के लघु हीरक के कण !

जड जग स्पन्दित,
निश्चल कम्पित,
फूट पडे अवनी के सचित सपने मृदुतम अकुर बन बन !

रोया चातक,
सकुचाया पिक,
मत्त मयूरो ने सूने मे झडियो का दुहराया नर्तन !

सुख दुख से भर,
आया लघु उर,
मोती से उजले जलकण से छाये मेरे विस्मित लोचन !

४५

तुम सो जाओ मै गाऊँ ।
मुझको सोते युग बीते
तुमको यो लोरी गाते,
अब आओ मैं पलको मे स्वप्नो से सेज बिछाऊँ ।
प्रिय ! तेरे नभमन्दिर के
मणि-दीपक बुझ बुझ जाते,
जिनका कण कण विद्युत् है मैं ऐसे प्राण जलाऊँ ।
क्यो जीवन के शूलो मे
प्रतिक्षण आते जाते हो ?
ठहरो सुकुमार ! गलाकर मोती पथ मे फैलाऊँ ।
पथ की रज मे है अकित
तेरे पदचिह्न अपरिचित;
मैं क्यो न इसे अञ्जन कर आँखो में आज बसाऊँ ।
जल सौरभ फैलाता उर
तब स्मृति जलती है तेरी,
लोचन कर पानी पानी मैं क्यो न उसे सिचवाऊँ ।
इन फूलो मे मिल जाती
कलियाँ तेरी माला की,
मैं क्यो न इन्ही काँटो का सचय जग को दे जाऊँ !
अपनी असीमता देखो
लघु दर्पण में पल भर तुम;
मै क्यो न यहाँ क्षण क्षण को धो धो कर मुकुर बनाऊँ ।
हँसने मे छू जाते तुम
रोने मे वह सुधि आती,
मै क्यो न जगा अणु अणु को हँसना रोना सिखलाऊँ ।

४६

तुम दुख बन इस पथ से आना!
शूलो मे नित मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन,
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना!
वह सौरभ हूँ मै जो उडकर,
कलिका मे लौट नही पाता;
पर कलिका के नाते ही प्रिय जिसको जग ने सौरभ जाना!
नित जलता रहने दो तिल तिल,
अपनी ज्वाला मे उर मेरा,
इसकी विभूति मे फिर आकर अपने पद-चिह्न बना जाना!
वर देते हो तो कर दो ना,
चिर आँखमिचौनी यह अपनी,
जीवन में खोज तुम्हारी है मिटना ही तुमको छू पाना!
प्रिय! तेरे उर मे जग जावे,
प्रतिध्वनि जब मेरे पी पी की,
उसको जग समझे बादल मे विद्युत् का बन बन मिट जाना!
तुम चुपके से आ बस जाओ,
सुख दुख सपनो मे श्वासो मे,
पर मन कह देगा यह वे है आँखे कह देगी पहचाना!
जड जग के अणुओ मे स्मित से,
तुमने प्रिय जब डाला जीवन,
मेरी आँखो ने सींच उन्हे सिखलाया हँसना खिल जाना!
कुहरा जैसे घन आतप मे,
यह ससृति मुझमे लय होगी;
अपने रागो से लघु वीणा मेरी मत आज जगा जाना!

४७

जाग बेसुध जाग !

अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक-हार,
भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रतिद्वार,
शूल जिसने फूल छू चन्दन किया सन्ताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पद-चाप,
करुणा के दुलारे जाग !

शङ्ख मे ले नाश मुरली में छिपा वरदान,
दृष्टि मे जीवन अधर मे सृष्टि ले छविमान,
आ रचा जिसने स्वरों मे प्यार का ससार,
गूँजती प्रतिध्वनि उसी की फिर क्षितिज के पार,
वृन्दाविपिनवाले जाग !

*   *   *

रात के पथहीन तम मे मधुर जिसके श्वास,
फैल भरते लघु कणो मे भी असीम सुवास,
कटको की सेज जिसकी आँसुओ का ताज,
सुभग ! हँस उठ उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज;
बीती रजनि प्यारे जाग !

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासे करती रहती नित प्रिय का अभिनन्दन रे !
पदरज को धोने उमडे आते लोचन मे जल-कण रे !
अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीडा का चन्दन रे !
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे !
मेरे दृग के तारक मे नव उत्पल का उन्मीलन रे !
धूप बने उडते रहते है प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर ताल देता पलको का नर्तन रे !



प्रिय ! सान्ध्य गगन,
मेरा जीवन !

यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधिभीने स्वप्न रँगीले घन !

साधो का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हँसती चितवन !

लाता भर श्वासो का समीर,
जग से स्मृतियो का गन्ध धीर,
सुरभित है जीवन-मृत्यु-तीर,
रोमो में पुलकित कैरव-वन !

अब आदि-अन्त दोनो मिलते,
रजनी-दिन-परिणय से खिलते,
आँसू मिस हिम के कण ढुलते,
ध्रुव आज बना स्मृति का चल क्षण !

इच्छाओ के सोने से शर,
किरणो से द्रुत झीने सुन्दर,
सूने असीम नभ मे चुभकर—
बन बन आते नक्षत्र-सुमन !

घर लौट चले सुख-दु.ख-विहग,
तम पोछ रहा मेरा अग जग,
छिप आज चला वह चित्रित मग,
उतरो अब पलको मे पाहुन !

रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले।

लोचनो मे क्या मदिर नव?
देख जिसको नीड की सुधि फूट निकली बन मधुर रव।
भूलते चितवन गुलाबी—
में चले घर खग हठीले।

छोड किस पाताल का पुर?
राग से बेसुध चपल सपने लजीले नयन में भर,
रात नभ के फूल लाई,
आँसुओं से कर सजीले।

आज इन तन्द्रिल पलो मे।
उलझती अलके सुनहली असित निशि के कुन्तलो मे।
सजनि नीलम-रज भरे
रँग चूनरी के अरुण पीले।

रेख सी लघु तिमिर-लहरी,
चरण छू तेरे हुई है सिन्धु सीमाहीन गहरी।
गीत तेरे पार जाते
बादलो की मृदु तरी ले।

कौन छायालोक की स्मृति,
कर रही रंगीन प्रिय के द्रुत पदो की अक-ससृति?
सिहरती पलके किये—
देती विहँसते अधर गीले।

५१

शून्य मन्दिर मे बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !

अर्चना हो शूल भोले,
क्षार दृग-जल अर्घ्य हो ले,
आज करुणा-स्नात उजला
दुख हो मेरा पुजारी !

नूपुरो का मूक छूना,
सरुव कर दे विश्व सूना,
यह अगम आकाश उतरे
कम्पनो का हो भिखारी !

लोल तारक भी अचञ्चल,
चल न मेरा एक कुन्तल,
अचल रोमो मे समाई
मुग्ध हो गति आज सारी !

राग मद की दूर लाली,
साध भी इसमे न पाली,
शून्य चितवन मे बसेगी
मूक हो गाथा तुम्हारी !

५२

अश्रु मेरे माँगने जब
नीद मे वह पास आया!
स्वप्न सा हँस पास आया!

हो गया दिव की हँसी से
शून्य मे सुरचाप अंकित,
रश्मि-रोमो मे हुआ
निस्पन्द तम भी सिहर पुलकित,

अनुसरण करता अमा का
चाँदनी का हास आया!

वेदना का अग्निकण जब
मोम से उर मे गया बस,
मृत्यु-अञ्जलि मे दिया भर
विश्व ने जीवन-सुधा-रस!

माँगने पतझार से
हिम-विन्दु तब मधुमास आया!

अमर सुरभित साँस देकर
मिट गये कोमल कुसुम झर,
रविकरो मे जल हुए फिर,
जलद में साकार सीकर,

अंक में तब नाश को
लेने अनन्त विकास आया

५३

क्यो वह प्रिय आता पार नही ?

शशि के दर्पण मे देख देख,
मैंने सुलझाये तिमिर-केश,
गूँथे चुन तारक-पारिजात,
अवगुण्ठन कर किरणे अशेष,

क्यो आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृङ्गार नही ?

स्मित से कर फीके अधर अरुण,
गति के जावक से चरण लाल,
स्वप्नो से गीली पलक आँज,
सीमन्त सजा ली अश्रु-माल,

स्पन्दन मिस प्रतिपल भेज रही
क्या युग युग से मनुहार नही ?

मैं आज चुपा आई चातक,
मै आज सुला आई कोकिल,
कण्टकित मौलश्री हरसिंगार,
रोके हैं अपने श्वास शिथिल !

सोया समीर नीरव जग पर
स्मृतियो का भी मृदु भार नही !

रूँधे है सिहरा सा दिगन्त,
सित पाटलदल से मृदु बादल,
उस पार रुका आलोक-यान,
इस पार प्राण का कोलाहल !

बेसुध निद्रा है आज बुने—
जाते श्वासो के तार नही !

दिनरात-पथिक थक गए लौट,
फिर गए मना कर निमिष हार,
पाथेय मुझे सुधि मधुर एक,
है विरह-पथ सूना अपार !

फिर कौन कह रहा है सूना
अब तक मेरा अभिसार नही ?



५४

क्यो मुझे प्रिय हो न बन्धन !

बन गया तम-सिन्धु का आलोक सतरङ्गी पुलिन सा,
रजभरे जगबाल से है अंक विद्युत् का मलिन सा,

स्मृति पटल पर कर रहा अब
वह स्वयं निज रूप-अंकन !

चाँदनी मेरी अमा का, भेंटकर अभिषेक करती,
मृत्यु-जीवन के पुलिन दो आज जागृति एक करती,

हो गया अब दूत प्रिय का
प्राण का सन्देश, स्पन्दन !

सजनि मैंने स्वर्णपिञ्जर मे प्रलय का वात पाला;
आज पुंजीभूत तम को कर बना डाला उजाला,

तूल से उर में समा कर
हो रही नित ज्वाल चन्दन !

आज विस्मृति-पथ मे निधि से मिले पदचिह्न उनके,
वेदना लौटा रही है विफल खोये स्वप्न गिनके;

घुल हुई इन लोचनो में
चिर प्रतीक्षा पूत अञ्जन !

आज मेरा खोज-खग गाता चला लेने बसेरा;
कह रहा सुख अश्रु से 'तू है चिरन्तन प्यार मेरा,'

बन गए बीते युगो को
विकल मेरे श्वास स्पन्दन !

बीन-बन्दी तार की झङ्कार है आकाशचारी,
धूलि के इस मलिन दीपक से बँधा है तिमिरहारी,

बाँधती निर्बन्ध को मैं
बन्दिनी निज बेड़ियाँ गिन।

नित सुनहली साँझ के पद से लिपट आता अँधेरा,
पुलकपंखी विरह पर उड़ आ रहा है मिलन मेरा,

कौन जाने है बसा उस पार
तम या रागमय दिन।



५५

जाने किस जीवन की सुधि ले
लहराती आती मधु-बयार !

रञ्जित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मण्डन को आज मधुर ला रजनीगन्धा का पराग,

यूथी की मीलित कलियो से
अलि दे मेरी कबरी सँवार !

पाटल के सुरभित रङ्गो से रँग दे हिम सा उज्ज्वल दुकूल,
गुथ दे रशना मे अलि-गुञ्जन से पूरित झरते बकुल-फूल,

रजनी से अञ्जन माँग सजनि
दे मेरे अलसित नयन सार !

तारक-लोचन से सीच सीच नभ करता रज को विरज आज,
बरसाता पथ मे हरसिंगार केशर से चर्चित सुमन-लाज,

कण्टकित रसालो पर उठता—
है पागल पिक मुझको पुकार !
लहराती आती मधु-बयार

५६

प्रिय-पथ के यह शूल मुझे अलि प्यारे ही है !

हीरक सी वह याद
बनेगा जीवन सोना,
जल जल तप तप किन्तु
खरा इसको है होना !
चल ज्वाला के देश जहाँ अङ्गारे ही है !

तम-तमाल ने फूल
गिरा दिन-पलके खोली,
मैंने दुख मे प्रथम
तभी सुख-मिश्री घोली !
ठहरे पलभर देव अश्रु यह खारे ही है !

ओढ़े मेरी छाँह
रात देती उजियाला,
रजकण मृदु पद चूम
हुए मुकुलो की माला !
मेरा चिर इतिहास चमकते तारे ही है !

आकुलता ही आज
होगई तन्मय राधा,
विरह बना आराध्य
द्वैत क्या कैसी बाधा !
खोना पाना हुआ जीत वे हारे ही है !

५७

मेरी है पहेली बात !

रात के भीने सिताञ्चल-
से बिखर मोती बने जल,
स्वप्न पलको मे विचर झर
प्रात होते अश्रु केवल !
'सजनि मैं उतनी करुण हूँ, करुण जितनी रात !

मुस्करा कर राग मधुमय
वह लुटता पी तिमिरविष,
आँसुओ का क्षार पी मैं
बाँटती नित स्नेह का रस !
सुभग मैं उतनी मधुर हूँ मधुर जितना प्रात !

ताप-जर्जर विश्व उर पर—
तूल से घन छा गये भर,
दुख से तप हो मृदुलतर
उमडता करुणाभरा उर !
सजनि मैं उतनी सजल जितनी सजल बरसात !

मेरा सजल मुख देख लेते !
यह करुण मुख देख लेते !

सेतु शूलो का बना बाँधा विरह-वारीश का जल,
फूल सी पलके बनाकर प्यालियाँ बाँटा हलाहल,
दुखमय सुख,
सुखभरा दुख,
कौन लेता पूछ जो तुम
ज्वाल-जल का देश देते ?

नयन की नीलम-तुला पर मोतियो से प्यार तोला,
कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला !
भ्रान्तिमय कण,
श्रान्तिमय क्षण,
थे मुझे वरदान जो तुम
माँग ममता शेष लेते !

पद चले जीवन चला पलकें चली स्पन्दन रही चल,
किन्तु चलता जा रहा मेरा क्षितिज भी दूर धूमिल !
अङ्ग अलसित,
प्राण विजडित,
मानती जय जो तुम्ही
हँस हार आज अनेक देते !

घुल गई इन आँसुओ मे देव जाने कौन हाला,
झूमता है विश्व पी पी घूमती नक्षत्र-माला !

तिरासी

साध है तुम,
बन सघन तम,
सुरँग अवगुण्ठन उठा
गिन आँसुओ की रेख लेते।

शिथिल चरणो के थकित इन नूपुरो की करुण रुनझुन,
विरह का इतिहास कहती जो कभी पाते सुभग सुन,
चपल पग धर,
आ अचलउर।
वार देते मुक्ति, खो
निर्वाण का सन्देश देते।



५६

विरह की घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी सी !

दूर के नक्षत्र लगते पुतलियो से पास प्रियतर,
शून्य नभ की मूकता मे गँजता आह्वान का स्वर,
आज है नि सीमता
लघु प्राण की अनुगामिनी सी !

एक स्पन्दन कह रहा है अकथ युग युग की कहानी,
हो गया स्मित से मधुर इन लोचनो का क्षार पानी;
मूक प्रति निश्वास है
नव स्वप्न की अनुरागिनी सी !

सजनि ! अन्तर्हित हुआ है 'आज' मे धुँधला विफल 'कल',
हो गया है मिलन एकाकार मेरे विरह मे मिल,
राह मेरी देखती
स्मृति अब निराश पुजारिनी सी !

फैलते हैं साध्य नभ मे भाव ही मेरे रँगीले,
तिमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले;
बन्दिनी बनकर हुई
मैं बन्धनो की स्वामिनी सी !

९०

शलभ मैं शापमय वर हूँ! किसी का दीप निष्ठुर हूँ!
ताज है जलती शिखा
चिनगारियाँ शृङ्गार-माला,
ज्वाल अक्षय कोष सी
अंगार मेरी रङ्गशाला,
नाश मे जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ!
नयन मे रह किन्तु जलती
पुतलियाँ आगार होंगी,
प्राण मे कैसे बसाऊँ
कठिन अग्नि समाधि होगी!
फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु-मन्दिर हूँ!
हो रहे झर कर दृगो से
अग्नि-कण भी क्षार शीतल,
पिघलते उर से निकल
निश्वास बनते धूम श्यामल,
एक ज्वाला के बिना मै राख का घर हूँ!
कौन आया था न जाने
स्वप्न मे मुझको जगाने;
याद में उन अँगुलियो के
है मुझे पर युग बिताने;
रात के उर मे दिवस की चाह का शर हूँ!
शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सबेरा;
प्राण आकुल के लिए
सगी मिला केवल अँधेरा,
मिलन का मत नाम ले मै विरह मे चिर हूँ!

६१

मैं नीर भरी दुख की बदली !
स्पन्दन मे चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन मे आहत विश्व हँसा,
नयनो मे दीपक से जलते
पलको मे निर्झरिणी मचली !

मेरा पग पग सगीत भरा,
स्वासो से स्वप्न-पराग झरा,
नभ के नवरँग बुनते दुकूल,
छाया मे मलय-बयार पली !

मैं क्षितिज-भ्रुकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नवजीवन-अंकुर बन निकली !

पथ को न मलिन करता आना,
पदचिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग मे
सुख की सिहरन हो अत खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमडी कल थी मिट आज चली !

१२

चिर सजग आँखे उनीदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझको दूर जाना !

अचल हिमगिरि के हृदय मे आज चाहे कम्प होले,
या प्रलय के आँसुओ मे मौन अलसित व्योम रो ले;
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत्-शिखाओ मे निठुर तूफान बोले !
पर तुझे है नाशपथ पर चिह्न अपने छोड आना !

बाँध लेगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले ?
पथ की बाधा बनेगे तितलियो के पर रँगीले ?
विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना !

वज्र का उर एक छोटे अश्रुकण मे धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया ?
सो गई आँधी मलय की बात का उपधान ले क्या ?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नीद बनकर पास आया ?
अमरता-सुत चाहता क्यो मृत्यु को उर मे बसाना ?

कह न ठढी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर मे तभी दृग मे सजेगा आज पानी,
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका !
राख क्षणिक पतग की है अमर दीपक की निशानी !
है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना !

कीर का प्रिय आज पिञ्जर खोल दो !

हो उठी है चञ्चु छूकर,
तीलियाँ भी वेणु सस्वर,
बन्दिनी स्पन्दित व्यथा ले,
सिहरता जड मौन पिञ्जर !

आज जडता मे इसी की बोल दो !

जग पडा छू अश्रु-धारा,
हत परो का विभव सारा,
अब अलस बन्दी युगो का—
ले उडेगा शिथिल कारा !

पङ्ख पर वे सजल सपने तौल दो !

क्या तिमिर कैसी निशा है !
आज विदिशा ही दिशा है;
दूर-खग आ निकटता के—
अमर बन्धन में बसा है !

प्रलय-घन में आज राका घोल दो !

चपल पारद सा विकल तन,
सजल नीरद सा भरा मन,
नाप नीलाकाश ले जो—
बेडियो का माप यह बन,

एक किरण अनन्त दिन की मोल दो !

६४

प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मै !

श्वास मे मुझको छिपाकर वह असीम विशाल चिर घन,
शून्य मे जब छा गया उसकी सजीली साध सा बन,
छिप कहाँ उसमे सकी
बुझ बुझ जली चल दामिनी मै !

छाँह को उसकी सजनि नव आवरण अपना बनाकर,
धूलि मे निज अश्रु बोने मे पहर सूने बिताकर,
प्रात में हँस छिप गई
ले छलकते दृग यामिनी मैं !

मिलन-मन्दिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल 'गुण्ठन,
मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यो तप्त सिकता में सलिल-कण,
सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं !

दीप सी युग युग जलूँ पर वह सुभग इतना बता दे,
फूँक से उसकी बुझूँ तब क्षार ही मेरा पता दे !
वह रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं !

सजल सीमित पुतलियाँ पर चित्र अमिट असीम का वह,
चाह एक अनन्त बसती प्राण किन्तु ससीम सा यह,
रजकणो मे खेलती किस
विरज विधु की चाँदनी मैं ?

६५

सखि मै हूँ अमर सुहाग भरी!
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी!
किसको त्यागूँ किसको माँगूँ,
है एक मुझे मधुमय विषमय,
मेरे पद छूते ही होते,
काँटे कलियाँ प्रस्तर रसमय!
पालूँ जग का अभिशाप कहाँ
प्रतिरोमो मे पुलके लहरी!
जिसको पथ-शूलो का भय हो,
वह खोजे नित निर्जन गह्वर,
प्रिय के सन्देशो के वाहक,
मैं सुख-दुख भेटूँगी भुजभर,
मेरी लघु पलको से छलकी
इस कण कण मे ममता बिखरी!
अरुणा ने यह सीमन्त भरी,
सन्ध्या ने दी पद में लाली;
मेरे अगो का आलेपन—
करती राका रच दीवाली!
जग के दागो को धो धो कर
होती मेरी छाया गहरी
पद के निक्षेपो से रज में—
नभ का वह छायापथ उतरा,
श्वासो से घिर आती बदली
चितवन करती पतझार हरा!
जब मैं मरु मे भरने लाती
दुख से, रीती जीवन-गगरी!

सो रहा है विश्व पर प्रिय तारको मे जागता है !

नियति बन कुशली चितेरा—
रँग गई सुखदुख रँगो से
मृदुल जीवन पात्र मेरा !
स्नेह की देती सुधा भर अश्रु खारे माँगता है !

धूपछाँही विरह-वेला,
विश्व-कोलाहल बना वह
ढूँढ़ती जिसको अकेला,
छाँह दृग पहचानते पदचाप यह उर जानता है !

रङ्गमय है देव दूरी !
छू तुम्हे रह जायगी यह
चित्रमय क्रीडा अधूरी !
दूर रह कर खेलना पर मन न मेरा मानता है !

वह सुनहला हास तेरा—
अकभर घनसार सा
उड जायगा अस्तित्व मेरा !
मूँद पलकें रात करती जब हृदय हठ ठानता है !

मेघ-रूँधा अजिर गीला,
टूटता सा इन्दु-कन्दुक
रवि झुलसता लोल पीला !
यह खिलौने और यह उर ! प्रिय नई असमानता है !

६७

हे चिर महान् !

यह स्वर्णरश्मि छू श्वेत भाल,
बरसा जाती रङ्गीन हास,
सेली बनता है इन्द्रधनुष,
परिमल मल मल जाता बतास !
पर रागहीन तू हिमनिधान

नभ में गर्वित झुकता न शीश,
पर अंक लिए है दीन क्षार,
मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश-भार !
कितने मृदु कितने कठिन प्राण !

टूटी है कब तेरी समाधि,
झञ्झा लौटे शत हार हार,
बह चला दृगों से किन्तु नीर,
सुनकर जलते कण की पुकार !
सुख से विरक्त दुख मे समान !

मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप;
तन तेरी साधकता छू ले,
मन ले करुणा की थाह नाप !
उर में पावस दृग मे विहान !

६८

मैं सजग चिर साधना ले !

सजग प्रहरी से निरन्तर,
जागते अलि रोम निर्भर,
निमिष के बुद्बुद् मिटाकर,
एक रस है समय-सागर !

हो गई आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले !

मूँद पलको मे अचञ्चल,
नयन का जादू भरा तिल,
दे रही हूँ अलख अविकल—
को सजीला रूप तिल तिल !

आज वर दो मुक्ति आवे बन्धनो की कामना ले !

विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा,
दुःखसुख मे कौन तीखा,
मै न जानी औ' न सीखा !

मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ले !

६६

अलि मै कण कण को जान चली !
सबका क्रन्दन पहचान चली !

कुछ दृग मे हीरक-जल भरते,
कुछ चितवन इन्द्रधनुष करते,

टूटे सपनो के मनको से
कुछ सूखे अधरो पर झरते !

जिस मुक्ताहल से मेघ भरे,
जो तारो से तृण मे उतरे,
मै नभ के रज के रसविष के

आँसू के सब रँग जान चली !
दुख को कर सुख-आख्यान चली !

जिसका मीठा तीखा दशन,
अंगो में भरता सुखसिहरन,

जो पग में चुभ कर कर देता
जर्जर मानस चिर आहत मन !

जो मृदु फूलो के स्पन्दन से,
जो पैना एकाकीपन से,
मैं उपवन-निर्जन-पथ के, हर

कण्टक का मृदु मन जान चली !
गति का दे चिर वरदान चली !

जो जल मे विद्युत्-प्यास भरा,
जो आतप मे जल जल निखरा,

जो झरते फूलो पर देता
नित चन्दन सी ममता बिखरा !

जो आँसू से धुल धुल उजला,
जो निष्ठुर चरणो का कुचला,
मै मरु-उर्वर के कसक भरे

अणु अणु का कम्पन जान चली !
प्रति पग को कर लयवान चली !

नभ मेरा सपना स्वर्ण-रजत,
जग सगी अपना चिर परिचित,

यह शूल फूल का चिर नूतन
पथ मेरी साधो से निर्मित !

इन आँखो के रस से गीली,
रज भी है दिव से गर्वीली !
मैं सुख से चचल दुखबोझिल

क्षण क्षण का जीवन जान चली !
मिटने को कर निर्माण चली !



७०

मोम सा तन घुल चुका अब दीप सा मन जल चुका है !

विरह के रगीन क्षण ले,
अश्रु के कुछ शेष कण ले,
बरुनियो मे उलझ बिखरे स्वप्न के फीके सुमन ले,
खोजने फिर शिथिलपग
निश्वास-दूत निकल चुका है !

चल पलक है निर्निमेषी,
कल्प पल सब तिमिरवेषी,
आज स्पन्दन भी हुई उर के लिए अज्ञातदेशी !
चेतना का स्वर्ण, जलती
वेदना मे गल चुका है !

झर चुके तारक-कुसुम जब,
रश्मियो के रजत पल्लव,
सन्धि में आलोक-तम की क्या नही नभ जानता तब,
पार से अज्ञात वासन्ती—
दिवस-रथ चल चुका है !

खोल कर जो दीप के दृग,
कह गया 'तम में बढ़ा पग',
देख श्रम-धूमिल उसे करते निशा की साँस जगमग,
क्या न आ कहता वही
'सो याम अन्तिम ढल चुका है' ?

अन्तहीन विभावरी है,
पास अङ्गारक-तरी है,
तिमिर की तटिनी क्षितिज की कूल-रेख डुबा भरी है।
शिथिल कर से सुभग
सुधि-पतवार आज बिछल चुका है।

अब कहो सदेश है क्या ?
और ज्वाल विशेष है क्या ?
अग्निपथ के पार चन्दन-चाँदनी का देश है क्या ?
एक इंगित के लिए
शतवार प्राण मचल चुका है।

७१

पथ मेरा निर्वाण बन गया !
प्रति पग शत वरदान बन गया !

आज थके चरणो ने सूने तम मे विद्युत्-लोक बसाया,
बरसाती है रेणु चाँदनी की यह मेरी धूमिल छाया,

प्रलय-मेघ भी गले मोतियो—
का हिमतरल उफान बन गया !

अञ्जनवदना चकित दिशाओ ने चित्रित अवगुण्ठन डाले,
रजनी ने मरकतवीणा पर हँस किरणो के तार सँभाले,

मेरे स्पन्दन से झञ्झा का
हरहर लय-सन्धान बन गया !

पारद सी गल हुईं शिलायें नभ चन्दनचर्चित आगन सा,
अंगराग घनसार हुई रज आतप सौरभ-आलेपन सा,

शूलो का विष कलियो के
गीले मधुपर्क समान बन गया !

मिट मिट कर हर साँस लिख रही शतशत मिलनविरह का लेखा,
निज को खोकर निमिष आँकते अनदेखे चरणो की रेखा;

पल भर का वह स्वप्न तुम्हारी
युग युग की पहचान बन गया !

देते हो तुम फेर हास मेरा निज करुणा-जल-कण से भर,
लौटाते हो अश्रु मुझे तुम अपनी स्मित से रंगोमय कर,

आज मरण का दूत तुम्हे छू
मेरा पाहुन प्राण बन गया !

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन !

अगरुधूम सी साँस सुधिगन्धसुरभित,
बनी स्नेह-लौ आरती चिर अकम्पित,
हुआ नयन का नीर अभिषेक-जलकण !

सुनहले सजीले रंगीले धबीले,
हसित कण्टकित अश्रु-मकरन्द गीले,
बिखरते रहे स्वप्न के फूल अनगिन !

असितश्वेत गन्धर्व जो सृष्टि-लय के,
दृगों को पुरातन अपरिचित हृदय के,
सजग यह पुजारी मिले रात औ' दिन !

परिधिहीन रंगोंभरा व्योम-मन्दिर,
चरण-पीठ भू का व्यथासिक्त मृदु उर,
ध्वनित सिन्धु में है रजत शंख का स्वन !

कहो मत प्रलय द्वार पर रोक लेगा,
वरद मैं मुझे कौन वरदान देगा ?
बना कब सुरभि के लिए फूल बन्धन ?

व्यथाप्राण हूँ नित्य सुख का पता मैं,
धुला ज्वाल में मोम का देवता मैं,
सृजन-श्वास हो क्यों गिनूँ नाश के क्षण ?

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !
रजत शख-घडियाल स्वर्ण वशी-वीणा-स्वर,
गए आरती-वेला को शत शत लय से भर,
जब था कल कठो का मेला,
विहँसे उपल तिमिर था खेला !
अब मन्दिर मे इष्ट अकेला,
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो !
चरणो से चिन्हित अलिन्द की भूमि सुनहली,
प्रणत शिरो के अंक लिए चन्दन की दहली,
झरे सुमन बिखरे अक्षत सित,
धूप अर्घ्य नैवेद्य अपरिमित,
तम मे सब होगे अन्तर्हित
सबकी अर्चितकथा इसी लौ मे पलने दो !
पल के मनके फेर पुजारी विश्व सो गया,
प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरो बीच खो गया,
साँसो की समाधि सा जीवन,
मसि-सागर सा पथ गया बन,
रुका मुखर कण कण का स्पन्दन,
इस ज्वाला में प्राण-रूप फिर से ढलने दो !
झञ्झा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओ में भर आभा-जल,
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो !

७४

पूछता क्यो शेष कितनी रात ?
अमर सम्पुट मे ढला तू,
छू नखो की कान्ति चिर
सकेत पर जिनके जला तू,
स्निग्ध सुधि जिनकी लिए कज्जल-दिशा मे धँस चला तू,
परिधि बन घेरे तुझे वे उँगलियाँ अवदात !

झर गए खद्योत सारे,
तिमिर-वात्याचक्र मे
सब पिस गए अनमोल तारे,
बुझ गई पवि के हृदय मे काँप कर विद्युत्-शिखा रे !
साथ तेरा चाहती एकाकिनी बरसात !

व्यगमय है क्षितिज-घेरा,
प्रश्नमय हर कण निठुर सा
पूछता परिचय, बसेरा,
आज हो उत्तर सभी का ज्वालवाही श्वास तेरा !
छीजता है इधर तू उस ओर बढता प्रात !

प्रणत लौ की आरती ले,
धूमलेखा स्वर्ण-अक्षत
नील-कुमकुम वारती ले,
मूक प्राणो में व्यथा की स्नेह-उज्ज्वल भारती ले,
मिल अरे बढ़ आ रहे यदि प्रलय झझावात !
कौन भय की बात ?

अनुक्रमणिका